THE BOOK WAS DRENCHED

UNIVERSAL
LIBRARY
OU_180836
UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H18.6/P18N Accession No. G.H. 1164

Author पाण्डेय, गंगाप्रसाद।

Title नवीना। 1954

This book should be returned on or before the date last marked below.

नवीना

रचयिता
श्री गंगाप्रसाद पाण्डेय

प्रकाशक
रामनारायण लाल
प्रकाशक तथा पुस्तक-विक्रेता
इलाहाबाद

प्रथम संस्करण] १९५४ [मूल्य २॥)

प्रकाशक
रामनारायण लाल
प्रयाग

मुद्रक
नरोत्तमदास अग्रवाल एम० ए०
नेशनल प्रेस
प्रयाग

निवेदन

'नवीना' का प्रकाशन उद्जन बम के परीक्षण काल में हो रहा है; इसलिये इसके विषय में कुछ अधिक कहने का अवकाश नहीं है।

किन्तु इतना तो अवश्य कहना चाहता हूँ कि अविश्वास, अनास्था तथा आतंक की जिस प्रतिक्रिया का भीषण परिणाम उद्जन बम है, ठीक उसके विपरीत 'नवीना' में आप को विश्वास, आस्था और परस्पर स्नेह-सद्भावना के स्वर मिलेंगे।

मैं मानता हूँ कि मनुष्यता का विकास अभी अपूर्ण है और मनुष्य नाना संघर्षों के साथ पूर्णता की ओर बढ़ रहा है। नवीन प्रभात के उस प्रकाश की ओर 'नवीना' की कविताएँ उन्मुख हैं जिसके द्वारा मानवता का बहिरंतर संतुलित रूप में उद्भासित होगा और जगजीवन में स्थायी सुख-शान्ति की स्थापना होगी।

मेरी इन हार्दिक भावनाओं का आभास मात्र भी यदि 'नवीना' में पाठकों को मिल सका तो मैं अपना श्रम सार्थक समझूँगा।

साहित्यकार संसद
प्रयाग
सावनी, १९५४

गंगाप्रसाद पाण्डेय

अनुक्रम

कविता	पृष्ठ
१—चेतना केन्द्र का छुटा तीर	१
२ – प्रिय मिलन का दिन न आया	२
३—वेदना वरदान पाया	३
४—सरस सान्ध्य समीर सेवित	४
५—प्राण रे तू आज उड़ चल	५
६—नीरव निशीथ पूर्णिमा सजल	६
७—स्नेह का शृंगार	७
८—सावन प्लावन बारिद विहार	८
९—आज तुम बिन विकल जीवन	९
१०—सोहता प्रिय प्रकृति में यह स्नेह का शृंगार किसका	१०
११—मुखर कवि का गान	११
१२—ये भरे बादल	१२
१३—छू गया छुपकर न जाने कौन मन के तार	१३
१४—मन के मंजीर मचल उठते	१४
१५ – शरद की सरस वायु बहने लगी है	१६
१६—ऐ शिरीष के फूल	१७
१७—प्राण सरगम के स्वरों में साधना के बोल	१९
१८—चिर सजग हृदय में कौन पीर	२०
१९—सुमुखि दूर ही अब रहने दो	२१
२०—बंदिनी निधियाँ जगत की साथ ही मेरे चरण में	२२
२१—गगन स्वर में स्वर मिला क्यों कोकिला गाती सवेरे	२३
२२—सुधि से शिथिल आज संसार	२४
२३—प्राण न अब मुझको रोना है	२५
२४—स्नेह के आधार मेरे	२६
२५—फिर न आयेगा कभी क्या	२७

कविता	पृष्ठ
२६—बेसुध से इन विरस क्षणों में	२८
२७—प्रिय पुलक के गान मेरे	२६
२८—कोई कहता है कुछ गाऊँ	३०
२६—आज भी क्यों विश्व प्यारा	३१
३०—नव वसंत की साँझ सुनहला सुन्दर सा आकाश	३२
३१—युगों से प्रणय पंथ में दीप मेरा	३३
३२—व्यर्थ यह गुमान है	३५
३३—आज कितना सफल जीवन	३६
३४—बहुत दिनों के बाद आज ये	३७
३५—जीवन साधना का सार	३८
३६—जागो अब तो बीती रात	३६
३७—शून्यनभ सुधि आज किसकी है जगाता विकल मन में	४०
३८—पतझर के दिन	४१
३६—आज विदा हो रानी	४२
४०—नील नभ सर में	४३
४१—नीरव निशीथ	४४
४२—सावन की	४५
४३—सिहरती सी सावन की रात	४६
४४—मुग्ध जीवन प्राण हे छवि, मुग्ध जीवन प्राण	४७
४५—कलिके	४८
४६—फिर से, सावन के दिन आए	४६
४७—जब याद कभी तुम आ जाती	५०
४८—जो बीत गई सो बात गई	५१
४६—बिखरते ही शशि की मुसकान	५२
५०—चल पड़ा जहान	५३
५१—सपन में	५४
५२—स्वप्न में तुम सकुच आई	५५
५३—ऐ नंगे भूखे कंकालों के	५७
५४—स्निग्ध कितनी सरस आज की चाँदनी	५६
५५—शत स्वागत नवजीवन हे	६०
५६—बादरिया आँगन की	६१
५७—मुझसे ही मेरा अलख द्वन्द	६२

कविता	पृष्ठ
५८—शरद पूर्णिमा की छाया में	६४
५९—लो स्वर्ग उतर आया भूपर	६५
६०—दीप मालाओं का शृंगार	६६
६१— कितना प्यारा चाँद गगन में	६७
६२—हे महामानव महाकवि	६८
६३—विश्व चलता जा रहा है	६९
६४—तुमने मुझको भुला दिया	७०
६५—खिली फागुनी चाँदनी मधु बरसती	७१
६६—सब कुछ सहते जाना होगा	७३
६७—साधना का सुफल सुन्दर	७५
६८—तब मैं तुम्हें याद करता हूँ	७६
६९—यह भादों की रात	७८
७०—मेघ मंदिर में गगन के देवता की बीणा	७९
७१—दीप शिखा की श्री सुषमा से	८०
७२—यह भारत की अभिनव होली	८१
७३—छलकती मीठी मन की बात	८२
७४—गाँधी बाबा सुनो पुकार	८३
७५—फागुनी सातें सिहरता प्रकृति का प्रिय गात	८४
७६—भूल न सकती है जीवन भर	८६
७७—गूंजता जग फाग मग-मग	८८
७८—पिछली रात साथ में सुख से बात-बात में बीती	९०
७९—तारिका सी कौन तुम, जीवन क्षितिज की छोर में	९१
८०—नया बादल आ गया	९२
८१—यह बरसाती रात मिलन की	९३
८२—मंद मदिर बहती पुरवाई	९५
८३—बोल मन, पावस की पहचान	९६
८४—एक यों ही रात, फिर बरसात की	९७
८५—बरसो	९८
८६—शुभ्र शरद ऋतुओं की रानी	९९
८७—वस्तु सत्य की विजय हो गई	१००
८८—संगम पाकर गंगा का जल	१०२
८९—छिपकर कौन हृदय में आता	१०५

कविता	पृष्ठ
९०—याद है वह रात	१०६
९१—सुखद याद आती	१०७
९२—बीत चली बरसात शरद की आभा लगी झलकने	१०८
९३—कभी चेत में चैत की चाँदनी से	१०९
९४—आज धरा ने छीनी नभ से	१११
९५—माया मृग मरीचिका में फँस	११३
९६—भारतेन्दु पूर्णेन्दु तुम्हारी सृजन शक्ति अभिनव अविकम्पित	११४
९७—छोटा सा दिन काम न होता	११५
९८—सचमुच सकुच स्वर्ग बेचारा	११७
९९—जल उठे दीप जगमग सजी आरती	११९
१००—याद फिर आती तुम्हारी	१२०
१०१—अयि ज्योति किरण	१२१
१०२—प्रात की किरणें सुनहली	१२२
१०३—धुंधला सा यह चाँद गगन में चढ़ी फागुनी रातें	१२४
१०४—मचल रही है आज कल्पना नभ के छल छोरों में	१२६
१०५—कामायनी कला के कविवर नवयुग के अधिनायक	१३१
१०६—मिट्टी की यह माँग	१३२
१०७—कुछ वर्ष पूर्व	१३३
१०८—लौ में पिए साँझ की लाली	१३५
१०९—आज हुई अर्चना ऋचाओं से	१३६
११०—बाहु में भर चाँदनी तरु सो गए	१३८
१११—भर अलख उदासी जगती में	१३९
११२—सुषमित शरद की शर्वरी	१४०
११३—जागो प्राण के जलजात	१४१
११४—एक दिन यों ही चले जब	१४२
११५—आज कैसी चाँदनी	१४४
११६—होली प्रेम पर्व की रानी	१४५
११७—कभी-कभी मैं इस शरीर से	१४६
११८- तुम्हारी सुधि की यह बरसात	१४८
११९—जीवन का आधार बनी तुम	१४९
१२०—प्रिय मधुबन में होली	१५०
१२१—उठ रहा तूफान	१५१

कविता	पृष्ठ
१२२—मन के हैं कुछ काम, काम कुछ तनके किसे सँभालूँ	१५२
१२३—मानव	१५३
१२४—मनुज तुम्हारी	१५६
१२५—विश्व-वृक्ष के वृहत् वृन्त में	१५८
१२६—नील-नभ-सागर तरंगों की तुला में	१६०
१२७—तुक नहीं मिलता	१६१
१२८—मैं दुधारी गाय	१६२
१२९—मन के राजमार्ग तो कम हैं	१६३
१३०—एक वर्ष के बाद	१६५

—:*:—

—१—

चेतना केन्द्र का छुटा तीर!
जिसको सब कहते हैं जीवन
वह विच्छुड़न का वेदन अधीर!

भ्रम के पंखों की यति-गति मय
मन की क्रीड़ा का कलित छन्द,
विज्ञान-ज्ञान दर्शन महान—
के संघर्षों का तुमल द्वन्द,
अपनी अनादि वासना-पूर्ति—
का, साधन बन सहता विषम पीर!

निष्कर्ष चरम नश्वरता का
अपने क्रम का अविरत विधान,
यह अलग इकाई पर इसके
चेतन सम्पुट में सब जहान,
यह सतत् सृष्टि चिर जन्म-मरण—
की, साँसों पर वहता सुधि समीर!

यह काल-मुक्त क्षण का बन्दी
रस-रूप-रंग की मधु माया,
साधों की संचित स्नेह-शक्ति
रागों की छलनातुर माया,
यह जड़-चेतन का गँठ-बन्धन
इसके आत्मा इसके शरीर!
चेतना केन्द्र का छुटा तीर!

—२—

प्रिय मिलन का दिन न आया !

युग युगों का स्नेह साथी
साधना में क्षीण होकर,
बज रहा हूँ भूल सुख-सुधि
वेदना की वीण बनकर;
प्राण मेरी रागिनी का स्वर न क्यों पहचान पाया ?

करुण कितना प्रेम-पारावार—
की, प्रिय थाह पाना,
दूर से परिचित किसी की
चाह में उस पार जाना;
कौन जाने फिर कहाँ यह पूर्ण होगी मोह-माया ?

प्रिय मिलन का दिन न आया !

—३—

वेदना वरदान पाया !

हृदय के अपने रुदन को हास से मैंने छिपाया !

हो गए सब सरस मुझको
फूल ही से शूल सुन्दर,
झाँकता झंझा अनिल भी
ले मलय का मधु निरन्तर,

दूर था जो कल्पना से आज वह उर में समाया !

बन गए अब दुःख के दिन
सुख-सने संतोष के क्षण,
विरह अपनी विरसता में
सरसता संयोग बन-बन,

अग्नि की आतप बिना कब स्वर्ण ने सम्मान पाया ?
वेदना वरदान पाया !

—४—

सरस सान्ध्य समीर सेवित विहरते थे सरित तट पर,
बाहु बंधन उर विकम्पित अधर पर मधु अधर धर-धर!

स्वच्छ सिकता में सरसता से सने हम घूमते थे,
मदिर बातों से बने उन्मत्त मधुमय झूमते थे!

भर समुद किलकारियाँ थीं चूमतीं लहरें किनारा,
पुलक आकुल प्रकृति से मिल सिहरता था मन हमारा!

नील मेघ विहीन नभ में चन्द्रिका थी चारु छाई,
दे रहीं थीं तारिकाएँ मिलन की मंगल बधाई!

स्वर्ण लतिका से लहरते गात में वह हरित सारी,
इन्द्रधनुषी रंग भरती नीलिमा द्युतिमय किनारी!

स्वर्ग सुख वरदान भू पर था मिला हमको उसी दिन,
बात करते रात बीती प्रात सुख उच्छ्वास गिन-गिन!

हृदय-धन मधुरे तुम्हारे ही लिए मैंने सँजोया,
अवनि पर उतरो सँभालो यह सुखों का रत्न खोया!

दूर हैं हम विवश फिर भी वह अमर क्षण है न भूला,
स्नेह से सिंचित सुमन सुख ले सुरभि सुधि आज फूला!

—५—

प्राण रे तू आज उड़ चल !

प्राण प्रिय के चरण धोलें
दृग बहा जल धार अविरल !

हृदय में अंकित मधुरिमा मय
मनोहर छवि छटा से,
जो मिले थे भाव मन को
घुमड़ते सावन घटा से,
गगन मानस में बरसने को
व्यथा का वारि निर्मल !

प्रेम पारावार उमड़ा
चन्द्रिका को चकित छूने,
समय सागर में तिरोहित
साधना के स्वप्न सूने,
क्या न प्रिय के प्राण होंगे
मधु मिलन को विकल विह्वल ?

प्राण रे तू आज उड़ चल !

—६—

नीरव निशीथ पूर्णिमा सजल
लहराती डाली-डाली में,
छिटकी नवीन छवि छटा शुभ्र
अधखिली कली शेफाली में!
पुलकित हो कण-कण पीता है
देखो शशि सीकर सरस आज,
है क्षितिज साजती स्नेह-सिक्त
नभ-अवनि मिलन का नवल साज!
हैं सजग विहग गाती कोयल
मेरे मन का अनुराग राग,
क्या मानवता के महामिलन—
का, भाग्य अचानक उठा जाग?
उपवन को सुरभित साँसों से
रजनी गंधा कर रही प्यार,
है अग-जग मधु से मुग्ध मौन
सुख का सागर उमड़ा अपार!
बहती बयार लहराता सर
लह-लह कर पत्ते रहे मचल,
इस प्रकृति मधुरिमा में होंगे
ममता के मेरे स्वप्न सफल!

—७—

स्नेह का शृंगार !

अवनि अपने अंक में धर
हरित साड़ी जड़ित केशर,
ले सुमन का साथ अपने,

रंगमय उपहार।
स्नेह का शृंगार !

सिक्त अंचल कर अवनि का
सरसता में नभ सिहरता,
नत नयन करता धरा से

मुक्त मधु व्यापार।
स्नेह का शृंगार !

तृप्ति जग में कौन पाता
मेघ यह गाता बताता,
समझ दोनों गूथते हैं

अश्रु मुक्ता हार।
स्नेह का शृंगार !

पर सुमन सब हँस पड़े फिर
मृत्तिका की ले अमरता
गीत परिमल के बने

उनको बहार-बहार।
स्नेह का शृंगार !

—८—

सावन प्लावन वारिद बिहार !

चमकी चपला हिल गया हृदय
जग उठी अचानक मानस में
सोई सुधि किसकी दुर्निवार !

नत गगन देख उठ मिली अवनि
लहराता सत रंगा दुकूल
युग उर में शोभित बकुल हार !

तरु खड़े पुलक के कर पसार
ऊपर शाखा से मिला पवन
नीचे छाया से अंधकार !

कलियों के खिले अधर सुन्दर
अलियों ने पाया प्रिय पराग
केवल चातक ही बिना प्यार !

सावन प्लावन वारिद विहार !

—९—

आज तुम बिन विकल जीवन !

होड़ सा लेता युगों से
विरह विगलित एक क्षण-क्षण !

नेह-नीड़ में पला विहग-मन,
छोड़ मोह मय जग का बंधन,
खोजने तुमको चला प्रिय

पंख पुलकित प्राण उन्मन !

शेष बची बस सुधि छवि छाया ,
स्नेह शून्य केवल कवि काया ,
पीर पीकर कीर निकला !

रह गया पिंजर अचेतन
आज तुम बिन विफल जीवन !

—१०—

सोहता प्रिय प्रकृति में यह स्नेह का शृंगार किसका ?
कर रहे हैं सुमन वितरण सुरभि के मिस प्यार किसका ?

कौन सी छवि की सुखद सुधि—
में विहँसती कुसुम कलियाँ,
किस अगम अनुराग से पुलकित
थिरकतीं मधु तितलियाँ,

सिहरती संसृति सुनहली ले हृदय-आभार किसका ?

जग मधुरिमामय मिलन के—
स्वप्न से अलि गुनगुनाते,
विहग-दल कल कंठ भर-भर
आज किसका गीत गाते,

सौरव्य का सब को अचानक आ मिला उपहार किसका ?

विश्व - सागर सरस सुषमा—
से भरा नभ चूमता है,
किन्तु करुण अभाव लेकर
विकल मन कवि घूमता है,

प्रीत पलकों में पिरोता आँसुओं का हार किसका ?
सोहता प्रिय प्रकृति में यह स्नेह का शृंगार किसका ?

—११—

मुखर कवि का गान !

बढ़ चलेंगे पैर डगमग
लक्ष्य तक चलना निरन्तर,
हो न चाहे शक्ति बाहर
किंतु निर्बल है न अन्तर,

रह न सकता है उपेक्षित जागरण आह्वान !

ले अथक गति का सबल व्रत
चल पड़ेंगे अग्नि पथ पर,
एक स्वर से कर निनादित
विश्व-जीवन अवनि-अम्बर,

अब न बंदी रह सकेंगे एक क्षण भी प्राण !

गत हुए वे दिन पुराने
यातनाओं के भयंकर,
जानता प्रत्येक मानव
दासता से मृत्यु बढ़कर,

सब समान स्वतंत्र होंगे अन्यथा बलिदान !

मुखर कवि का गान,
एक स्वर सन्धान !

—१२—

ये भरे बादल,
भरी आँखों में जैसे हो लगा काजल!
झनन झनकारें,
गूँजते हों दूर जैसे पुलक पायल!
और यह शुभ रूप,
जैसे प्राण पोषक धूप जोड़ की!
और यह मधु स्वर,
विश्व की वाणी विजय पर जय अखाड़े की!
यह बनी छवि,
हो निछावर जो न ऐसा कौन कवि संसार में?
तृप्ति का तर्पण—
सहज ही बनता समर्पण स्नेह के शृंगार में!
मुग्ध तन - मन,
छू रही धरती गगन ब्रह्माण्ड एकाकार!
कौन कहता—
आह भरता, दुःख सहता प्रेम का व्यापार?
चेतना साकार,
जीवन, भव, विभव विस्तार खुलते ज्योति के शत द्वार!
आज पुलकित प्राण
उड़ चले ले पुलक पंखी गान हँसती जीत बन-बन हार!
यह रहस्य महान,
आकुल आत्मगत अनुमान होता सृष्टि का संचार!
बस मिलन का भाव—
हरता शेष सकल अभाव देता गीत का उपहार!
बादल का करो सत्कार!

—१३—

छू गया छुपकर न जाने कौन मन के तार,
गूँजती सूने हृदय में मौन मधु झंकार!

सजग पग मग खोज थककर
विमुख जीवन को बनाया,
प्रेम का पागल प्रलोभन
सकुच साँसों में सुलाया;

फिर किसी का प्राण अभिनय राग-रस की धार!

नील रेशम की यवनिका
हट गई फिर से उजाला,
विवश बोझिल कर उठे
फिर गूँथते मनुहार माला;

साध सी यह बढ़ रही नव ज्योत्स्ना सुकुमार!

अमर उर के भाव स्नेहिल
अजर यौवन की पिपासा,
चाँदनी की रूप मदिरा
पी, जगी फिर सुप्त आशा;

प्राण प्राणों के लिए फिर कर रहे अभिसार!
स्वप्न सुख के आज सहसा हो रहे साकार!

—१४—

मन के मंजीर मचल उठते
प्राणों की साध सजग होती,
सुधियों की सरिता का प्रवाह
नयनों से मिल बनता मोती!

छिप-छिप कर छू-छू जाता है
अन्तरतम को सुरभित समीर,
प्राणों की सरगम में बजता
करुणा का स्वर आकुल, अधीर!

छा गई साँझ चुप कोलाहल
पल भर में तम फैला अपार,
दो गगन दीप झिलमिल झिलमिल
जलते बुझते से निराधार!

लो साथ-साथ हँस कर दोनों
जीवन बाजी पर धरे दाँव,
वे जीत गए वे मृत्युञ्जय
बढ़ चले प्रगति-पथ सुदृढ़ पाँव!

विस्मृति के हिले कँगूरे सब
साकार सामने वह प्रतिमा,
तम के परदे में जो आती
सारा जीवन जिसकी महिमा!

बढ़ चली लता सिहरी कलियाँ
गलियाँ मधु से अभिसिक्त हुईं,
मैं बोल उठा साथी - साथी
चेतनता की अभिव्यक्ति नई!

बस इसी खोज में चल चलकर
जल जलकर चलना जलना है,
इन लघु दीपों के साथ - साथ
प्रातः प्रकाश से मिलना है।

—१५—

शरद की सरस वायु बहने लगी है,
हृदय में मिलन भाव भरने लगी है!

गगन जूहियों की तरल ज्योति पाकर,
सरों में कुमुदिनी विहँसने लगी है!

शिशुता धुली अब चकोरी किशोरी,
निशा जागरण साज सजने लगी है!

पहिन चाँदनी यामिनी मुसकराती,
कला कामिनी की निखरने लगी है!

हुआ स्वच्छ आकाश फूले धरा काँस,
दिशि-दिशि सुरभि से सिहरने लगी है!

शेफालिका लाज की लालिमा से
धरा का सजल अंक रँगने लगी है!

शरद की सरस वायु बहने लगी है!

—१६—

ऐ शिरीष के फूल?
धूल से सने विहँसते
करते से उपहास ग्रीष्म के

भीषण आतप का!

प्रखर से प्रखर तपन का ताप
प्राण शोषक झंझा झकझोर
अग्निमय अम्बर घोर कठोर

अरे तुम साधक मौन!

उड़ रही धूल छिप गया देश
केवल केवल उत्ताप शेष
सूखे सर-निर्झर क्षीण वेश

देखते दुर्जय शान्त!

वर्षा शरद वसंत हरित वन
चिर प्रसन्न तुम अनुपम शोभन
मधुव्रत में रत शाश्वत चेतन

सजे सुकृत के साज!

एक मात्र कवि कालिदास की
कुसुम कल्पना के सुकुमार
तुम हो राजकुमार
तथा तुम्ही को मिला अपरिचित

तुलसी का भी प्यार!

तुम वसंत से औ ग्रीषम से
रहते हो निस्संग समान
खिलना, हँसना, दुख-सुख सहना
संयमशील विधान

तुम्हारे जीवन दर्शन का !

ऋतु आशय के नहीं भिखारी
प्राणों के बस प्राण पुजारी
स्वानुकूल नभ अवनि अनिल कर
लेते पोषण प्राण

सदा तुम अपने मन का !

धरा गगन की अस्थिर हलचल
तुम्हे न कर पाती है विह्वल
सब मे निहित शक्ति जीवन की
अपने में रखते तुम निश्चल

तुम्हारी दिव्य दृष्टि अवधूत !

जीवन की गति संगति के तुम
रूप स्वरूप प्रतीक
स्निग्ध सहज गति से परिवर्तन
करते वरण पहुँचते मृदु मन

मिलते जहाँ जीवनाधार !

तुम सहास यौवन परिप्लावन
करते पुलकित मधुवन कानन
तुम्हें देख करता जग साहस
जगता मानव में मानवपन

तुम जीवन संदेश अमर !

रक्खा हित न सँजोए शूल,
ऐ शिरीष के कोमल फूल !

—१७—

प्राण सरगम के स्वरों में साधना के बोल,
तुल रहा जीवन अकेला तोल रे मन तोल!

ताल लय स्वर का सुधा रस—
पी, बना उन्मत्त यौवन,
कर रही पलकें लजीली
रागिनी का रूप वंदन,
हो रही साकार सुषमा
कल्पना अनुभूति बनकर,
आँसुओं से चरण धोती
हास का मधुमास भीतर;

बन रहा सहसा समर्पण आत्मभाव अमोल!

पा किसी को खो गया मैं
दूँ किसे सुधि का उलहना,
जो सदेह विदेह बनता
अब उसे क्या और कहना,
युग युगों के बाद फिर
आह्लाद का अवसर मिला है,
स्नेह के सुकुमार सीकर—
से, सिंचा शतदल खिला है;

भर रहा गति प्रेम प्लावन में हृदय मधु घोल!
आज सरगम के स्वरों में साधना के बोल!

—१८—

चिर सजग हृदय में कौन पीर ?
तन शिथिल विकल मन अति अधीर !

प्रियतम की सुधि स्पन्दन से झिल
आती जाती साँसों से मिल

करता रहता है सरस सजल उसको नित नीरव नयन नीर !

संसृति में साधो का नर्तन
गति में बिखेरता करुणा-कन

उकसाता अलसित सुख अतीत प्रणयी मन मधुकर गंध धीर !

विह्वल विषाद के घिरते घन
बरसाती मुक्ता मणि चितवन

पुलकित हो बिंध-बिंध जाता है किस सुमन तीर से यह शरीर ?
चिर सजग हृदय में कौन पीर ?

--१९--

सुमुखि दूर ही अब रहने दो!

अगम अमावस की निशीथ में ज्योति स्वप्न सुख से बुनने दो।

विकल विरस आकुल संसृति में
कितना व्यापक सूनापन,
आज इसी में मिल जाने को
उमड़ रहा यौवन, जीवन,

मुझे अकेले ही यह अपनी करुण कथा कहने-सुनने दो!

नभ की तममय क्षितिज कोर में
अवनि अंक में भर उद्‌गार,
नीरवता की छाया छवि से
एकाकी मन का अभिसार,

सरस-सँयोग-सुखद-सुधि-मधु को उर कलिका में ही घुलने दो!

मुझे दूर ही अब रहने दो,
जो कुछ मिला उसे सहने दो!

—२०—

बंदिनी निधियाँ जगत की साथ ही मेरे चरण में!

प्यार के पय से पला मैं
साधना के साथ खेला,
विश्व वैभव की विजय श्री
का बना अधिपति अकेला,

कौन जीवन की कहे अब मृत्यु भी मेरी शरण में!

गा रहे हैं मेघ नभ में
गान मेरा ही सुरीला,
प्रात ऊषा विहँसती है
हास ले मेरा रँगीला,

व्यस्त अग-जग के सभी कण आज मेरे अनुसरण में!

अरुणिमा मेरे अधर की
कलित कलियों को सजाती,
यह मदिर उच्छ्वास जगती
है जिसे सौरभ बताती,

व्याप्त हूँ सब विश्व में मैं पर छिपा निज आवरण में!
बंदिनी निधियाँ जगत की साथ ही मेरे चरण में!

—२१—

गगन स्वर में स्वर मिला क्यों कोकिला गाती सबेरे ?

रात भर के सुखद सपनों—
की रँगीली रूप माया,
हो उठी साकार सहसा
उस सुछवि की क्षीण छाया,

क्या उसी सँयोग-सुधि से हैं विकल पिक प्राण तेरे ?

बाल रवि के साथ निखरा
है नवल अनुराग जिसका,
युग युगों से चाहता है
अमर कवि अभिसार उसका,

अगम असमञ्जस मिटा अब पुकलते फिर प्राण मेरे !

एक क्षण को भी न जिसका
आज तक आभास पाया,
दूर जागृति में सदा जो
स्वप्न में क्यों पास आया,

चेतना इस भावना की विश्व का अवसाद घेरे !
गगन स्वर से स्वर मिला क्यों कोकिला गाती सबेरे ?

—२२—

सुधि से शिथिल आज संसार !

सरस-परस से मुखरित वीणा
के सब विगलित तार !

करुण राग छाया है नभ में,
विस्तृत पारावार उमड़ता—
कोलाहल का जग में,
यह कहती तिरती सुधि मन में,

भूल न करना प्यार !

बीते दिन वे बीती बातें,
कभी न जीवन में आयेंगी—
मधुर मिलन की मादक रातें,
हासमयी चंचल चितवन का

यह रोदन उपहार !
विषमता से बोझिल संसार !

—२३—

प्राण न अब मुझको रोना है ?

जो खोना था अब तक खोया
और न कुछ मुझको खोना है !

दूर बसे जो प्रिय थे अपने
मिटे सभी साधों के सपने
सब की सुधि विस्मृति के जल से

हँस-हँस बस मुझको धोना है !

मैंने सब को मन से चाहा
निज को खोकर उन्हें निबाहा
जल-जल मैंने राख उड़ा दी

बचा सभी मुझको सोना है !
प्राण न अब मुझको रोना है !

—२४—

स्नेह के आधार मेरे !
जलन की ज्वाला बुझाते,
दुःख में भी पास आते,
साथियों से तुम भले हो;
आँसुओं के हार मेरे !

मैल मन का धो बहाते,
पीर को पावन बनाते,
विश्व को शीतल करो तुम;
तप्त उर उपहार मेरे !

मुग्ध मन की मूक भाषा,
कामना की सजल आशा,
रूप हो तुम भावना के;
वेदना के सार मेरे !
स्नेह के आधार मेरे !

—२५—

फिर न आयेगा कभी क्या
मधु मिलन का वह मदिर क्षण ?

सरस कर, कर पर न धर
फिर क्या करोगी सुखद बातें,
ले अमित अभिसार आकुल
क्या न होंगी रजत रातें,
क्या न होगा फिर कभी प्रिय
प्रणय अभिनय का प्रदर्शन ?

हृदय के आकुल अभाव
न भाव फिर क्या बन सकेंगे,
प्रेम पारावार में दो मन
न फिर क्या तिर सकेंगे
साँस छूकर फिर न जग में
क्या चलेगी सुख समीरण ?

—२६—

बेसुध से इन विरस क्षणों में
फिर सुधि का संचार,
आज अमरता मरने वालों को
देगी क्या अपना प्यार?

क्या असीम में एक बार फिर
सीमा होगी अन्तर्धान,
पा खोया अपनापन फिर से
पुलकित होंगे पीड़ित प्राण!

सुख सस्मित सपनों की साधें
जीवन में होंगी साकार,
नाच उठेगा नीरव नयनों—
में, फिर वह आकुल अभिसार?

विहँस विजय बनकर आएगी
जब पिछले जीवन की हार?
उछल उठेगा मेरे मन में
अपनी उन भूलों का प्यार

भूल नहीं है स्नेह-सिन्धु में
जीवन नइया का खेना,
निर्ममता को निज प्रियतम की
हँस-हँस कर सरबस देना!

—२७—

प्रिय पुलक के गान मेरे !

आँसुओं से धुल बने—
अभिशाप सब वरदान मेरे !

दीप सा तन है जला
पर मन प्रभा से है प्रकाशित ,
बद्ध हूँ निज शृंखला में
किन्तु मुझसे विश्व शासित ,
हो चुके हैं आज तक

पूरे सभी अरमान मेरे !

प्रेम के पथ में मिला
पद-चिन्ह का उनके सहारा ,
पार है मँझधार अब तो
दीखता अपना किनारा ,
प्यार से पाले किसी ने

हैं सभी अभिमान मेरे !
ये पुलक के गान मेरे !

—२८—

काइ कहता है कुछ गाऊँ !

बात कहूँ क्या अपने मन की ,
एक घात है जग जीवन की ,
व्यथामयी इस करुण कथा को ,

कैसे किसे सुनाऊँ ?

विश्व चाहता है क्यों समता ,
लिए चल रहा स्वयं विषमता ,
चिर रहस्यमय इस गुत्थी को ;

कैसे मैं सुलझाऊँ ?

चूर हुए सुख के सब सपने ,
विछुड़े सभी प्राण प्रिय अपने ,
रूठा स्वयं आज अपने से ,

किसको कहो मनाऊँ ?
क्यों कोई कहता कुछ गाऊँ ?

—२९—

आज भी क्यों विश्व प्यारा ?

आज पलकों में न जाने
प्यार की कितनी सजलता,
उमड़ती सी आ रही है
हृदय से शुचि स्नेह सरिता,

डूबने से पर बचा हूँ ले मधुर सुधि का सहारा !

दूर जो साथी सगे थे
दूर तुम हो फिर कहो ना,
'विरह की इस विरसता को
प्राण हँस हँस कर सहो ना',

है बसा इस होड़ में बस आज कल जीवन हमारा !

दूर रह कर जी सकूँ तो
मैं नहीं जीवन जियेगा,
कटु हलाहल को मधुरता—
मय बनाकर ही पियेगा;

नेह की कल कनखियों से है कहो कब कौन हारा ?
है इसी से विश्व प्यारा !

—३०—

नव वसंत की साँझ सुनहला सुन्दर सा आकाश !

एक वर्ष के बाद हर्ष फिर
वन्य प्रकृति में छाया,
अलियों ने कलियों का चुम्बन
एक बार फिर पाया,

रोम-रोम को पुलकित करता बहता मलय बतास !

निझरे झरे सुमन तरु लहरे
कोयल मधु स्वर गाती,
रंग-विरंगे फूलों से मिल
तितली फिर इठलाती,

सुख-दुख का परिचित परिवर्तन जीवन का इतिहास !

किन्तु करुण कितनी मानवता
ममता लिए अथाह,
बिछुड़े जुड़े न फिर जीवन में
भरना केवल आह,

क्या मानव के इस जीवन का दुख ही चरम विकास ?

स्रष्टा की इस स्नेह-सृष्टि में
मानव सब से सुन्दर,
अपनेपन की चेतनता से
आकुल उसका अन्तर,

इसीलिए मैं पुलकित हो होकर भी आज उदास !
नव वसंत की साँझ सुनहला सुन्दर सा आकाश !

—३१—

युगों से प्रणय पंथ में दीप मेरा
अचल जल रहा और जलता रहेगा,
तिमिर से भरे विश्व में निस्व लव से
अमर साध लेकर मचलता रहेगा!

जलन को सजल प्राण की भेंट देकर
मदिर ज्योति को लोचनों में सँजोता,
स्वयं गल पिघल प्यास की मोतियों को
शिखा के करुण कंठ में है पिरोता,
शलभ स्नेह की साधना में निरन्तर
अथक चल रहा और चलता रहेगा!

विवश चाह को आँसुओं में समेटे
सरस साधकों की कथा है पुरानी,
विफल झर गए बाग के पुष्प कितने
मलय वात कहता उन्हीं की कहानी,
विरह की लता में मिलन का अमृत फूल
फलता रहा और फलता रहेगा!

चले आ रहे स्वप्न सब सत्य होकर
कहीं दूर से बादलों के सहारे,
विफल वेदना बन गई बावली सी
सफल हो रहे तृप्ति के भाव सारे,
कठिन कंटकों से वृथा प्रेम-पथ को
समय छल रहा और छलता रहेगा!

सुरभि तोड़ कर शूल की क्रूर कारा
पवन से पुलक प्यार अपना निभाती,
सघनतम गगन की घटा बीच ऊषा
पलक पाँवड़े प्रात के हित बिछाती,
बँधा बंधनों में मगर मुक्त मानी
हृदय पल रहा और पलता रहेगा!

—३२—

व्यर्थ यह गुमान है,
देश यह महान है!

जहाँ निरीह दीन-हीन
मानवों की टोलियाँ,

गा रही हैं बढ़ रही हैं
खा रही हैं गोलियाँ,

भीत त्रास, नाश का
जहाँ बना विधान है,

भूख-प्यास का स्वयम्
स्वरूप ही किसान है,

किन्तु जो न जग सका
भला वो क्या महान है!

जहाँ मनुष्य का मनुष्य
रक्त पान कर रहा,

जहाँ ममत्व के लिए
समत्व स्वत्व मर रहा,

जहाँ स्वदेश वासियों में
फूट फैलती रही,

जहाँ विदेशियों की
कूटनीति कौंधती रही,

किन्तु जो न मिल सका
भला वो क्या महान है,

व्यर्थ यह गुमान है कि देश यह महान है।

—३३—

आज कितना सफल जीवन !

बीतता दिन सोचते हो
प्रिय मिलन की मधुर वेला ,
सान्ध्य नभ की रंगमयता
छोड़नी मुझको अकेला ,
यामिनी की स्तब्धता में
सिहरता पर सुख समीरण !

साधना का सबल सम्बल
साथ में अपने सँजोए ,
नेह के नव कुञ्ज में
आकुल अभाव अनेक सोए ,
सुधि बसें संसार के होते
सभी मधुमय मदिर क्षण !

खोज की सीमा सकुच कर
तृप्ति बन-बन बिहँसती है ,
पुलक प्लावन में समाहित
वेदना अब बिलखती है ,
पूर्ण जीवन की कहानी
कह रहे जड़ और चेतन !
आज कितना सफल जीवन !

—३४—

बहुत दिनों के बाद आज ये
सूने दृग फिर भर आए हैं,
स्नेह सधे मानस के मोती
हार बना किसको लाये हैं?

जगी आज सोती सुधि किसकी
होता किसका स्वागत गान,
जल में थल में नभ में प्रतिक्षण
विहँस रहे हैं किसके प्रान!

सागर की फेनिल आकुलता
सरिता का कलकल हिल्लोल
स्तब्ध सभी सूनापन, सुनकर
विहगों का मधु मादक बोल?

पुलकित है सारी संसृति
पा, किसके आने का सन्देश,
महामिलन के मधुर क्षणों का
क्यों इतना आहत सा वेश!

—३५—

जीवन साधना का सार !

स्नेह सागर नाव जर्जर,
मैं अकेला अतल जल पर,
थकित हाथों में न कुछ बल,

छीनती विस्मृति अचानक
सुधि सबल पतवार !

ले चली चंचल तरंगे,
हृदय की आकुल उमंगे,
शेष आशा का न सम्बल,

प्रेम के पागल पथिक पर
हँस रही जलधार !

त्याग ही सुख की सफलता,
वरण कर जीवन विकलता,
मौन हो सब देखता चल,

सूख कर मँझधार होगी
चिर अपेक्षित पार !

जीवन साधना का सार !

—३६—

जागो अब तो बीती रात !

दिन मणि में तारे सब खोए,
पलकों में सब सपने सोए,
अरुण किरण अलसित आँखों में

आँक रही मधु प्रात !

विहग नीड़ से बाहर आए,
कवि नवजीवन गीत सुनाए,
खिली कली सज गए सुमन सुख

मुकलित तृण-तरु-पात !

मानवता ने ममता पाई
समता की फिर गई दोहाई
विकल विश्व ने करवँट बदली

जीवन सुषमा स्नात !

जागो बीती रात !

—३७—

शून्य नभ सुधि आज किसकी है जगाता विकल मन में ?

श्याम मेघों से झलकती
आँख की किसके पुतलियाँ ,
किस सुमुखि की इन्द्रधनुषी
चीर की छाया तितलियाँ ,

चन्द्रिका किस अमल आनन—
का, लिए अनुराग हँसती ,
सहज करुणामय करों से
परस किसको सरस करती ,

'प्यार का आधार जीवन' गा उठा कोई विजन में !

साधना से सिद्ध होता
है सभी का स्नेह संचित ,
कौन है जड़ और चेतन
पूर्ण जीवन से अपरिचित ,

हैं विकल सब कामनाएँ
सार जग का स्नेह संचय ,
क्षणिक जीवन के बटोही
का, यही बस पूर्ण परिचय ,

है यही व्यापार चलता विश्व के प्रत्येक कण में !
शून्य नभ सुधि आज किसकी है जगाता विकल मन में !

—३८—

पतझर के दिन,
सूना क्षण - क्षण,

आज सपन में आकर मुझको;
तुम प्रिय पुलकित कर दो!

भीगी पलकें,
उलझी अलकें,

करुणा कर के सरस परस से;
इनमें नवजीवन भर दो!

हँसते अधर,
धरें कर पर कर,

अभिशापित पीड़ित जीवन को
एक बार सुख का फिर वर दो!

पंगु प्राण पंछी को पर दो!

—३९—

आज विदा दो रानी !

जाग उठी फिर से जीवन में पागल पीर पुरानी !

दूर मुझे रखकर अपने से ,
मिली सदा तुम सुख सपने से ,

पागल सा मैं मृग-तृष्णा में दौड़ा, यह नादानी !

आकुल अधर तमक तन सूखा ,
अब भी मैं सनेह का भूखा ,

मिली मुझे बस इस ममता में केवल करुण कहानी !

अपनापन सब तुम्हें चढ़ाया ,
साधनहीन स्वयं कहलाया ,

कभी न मेरी हुईं एक क्षण बरबस बनी विरानी !

आज विदा दो रानी !

—४०—

नील नभ सर में,
सित कमलिनी सी विहँसती
निकलती जब चन्द्रिका,
मानस का मन हंस
विकल हो उड़ता पंख पसार—
प्यार से करने को आलिंगन निज प्रेयसि का!
पर ममता का जाल,
ज्वाल से शीतलता की आह
जला अपना तन सारा
पंख विहीन दीन गिरता भूपर निश्वास छोड़ता,
करता बादल सृष्टि!
छिपाता शशि को
अपनी आहों की कारा में,
जीत मान तब हँसता
अपनी व्यथा भुलाता!
किन्तु प्यार का भार,
और यदि हो वह सहज उदार
कौन है इस जग में जो
वरण करे ना हार?
उसी क्षोभ से
क्षमा लोभ से
ओस कणों में बिछता नित प्रति
शशि का शीतल प्यार
सींचता छायातन संसार!

—४१—

नीरव निशीथ,
उपवन के उर में शरद चन्द्रिका सोती थी!
पल्लव पलकों से
विरह व्यथा पीड़ित नव कलिका,
ओस कणों में रोती थी।
मैं भी उदास—
था, अनायास उस उपवन में उन्मन आया!
चली हवा लहरी लतिका
जग पड़ी चाँदनी भी वेसुध-
अम्बर में बादल का आँचल लहराया!
सिहमी सी सकुची,
देख मुझे ढक लिया अमल आनन अपना,
मैं उस चितवन का
रात-रात भर देखा करता हूँ सपना!

—४२—

सावन की ,

सुन्दर सजल ज्योत्स्ना नीरव निशि में
हरी दूब के ऊपर खाले किरणों का अवगुंठन ,

खेल रही थी खेल ।

कलियाँ जगी ,

विहग दल चहका प्रात समझ, फिर सहमें
चित्रित चुम्बन से विधु मधु के बूँद

कपोलों पर ,

देखा गगन अवनि का मेल !

मैं प्रिय की सुधि में बेसुध सा ,
अपनी ज्वाला के जीवन में—
शीतलता की खोज लिए ,

आया सरिता के तीर ,
बढ़ी कुछ और प्रेम की पीर!

मिलन की मृदुल थपकियाँ
लोल लहरियों से पाकर ,
सरिता का मन सिहर उठा, कातर !

अनायास ,

हँस पड़ी घटाएँ नभ के उर को चीर
बहा मेरे नयनों से नीर ;

कौन गति होगी मन भावन की !

—४३—

सिहरती सी सावन की रात !
सुमुखि तुम्हें क्या याद न आती
मधुर मिलन की बात ?

जो जीवन था आज सुरति है,
आकुल सी अभिव्यक्ति विरति है,
नेह नगर के परदेशी पर ;
यह कैसा आघात ?

सजल चाँदनी विष बरसाती,
सुप्त कामनाएँ उकसाती,
सुखद क्षणों की सुधि से सहसा ;
पुन-पुन पुलकित गात !

भीगी सी लो कोयल बोली,
गूंज उठी मधुपों की टोली,
रात नहीं विह्वल वियोग की ;
जागृति का यह प्रात !
सिहरती सी सावन की रात !

—४४—

मुग्ध जीवन प्राण हे छवि, मुग्ध जीवन प्राण!

स्नेह-सुधि का सिन्धु उर में
उमड़ता रहता निरन्तर,
सिहरता तिरता उसी में
भावना का रूप सुन्दर,
कामना की कलित कलियाँ
कमल चरणों में चढ़ाता,
स्वप्न के सुकुमार बन्धन में
तुम्हें जब बाँध पाता,

आँख में रहते मचलते मधु मिलन के गान!

आज जीवन में किसी की
खोज की ले चाह अविचल,
विश्व को करते प्रकाशित
प्राण मेरे दीप से जल,
प्यार का उपहार जग में
वेदना की साधना है,
बन गया आराध्य आकुल
अब स्वयं आराधना है,

दे गई कितनी सजलता अग्निमय पहिचान?
मुग्ध जीवन प्राण!

—४५—

कलिके,
खिलने के दिन आए!

सुमनों की छवि की तुम रानी
मधुवन के मन की दीवानी,
पल्लव का नव परिधान पहिन
अपने सौरभ में मस्तानी,

झूमती हुई हँस पड़ो आज
बेसुध सुख से जग भर जाए!

भूलो पतझर के दिवस करुण
अपनाओ अब उमंग नूतन,
लाली से आकुल अधर रँगो
प्रियतम का अभिनव आज मिलन,

मधु कोष लुटाते प्रकृति-प्राण
अलिदल स्वागत गायन गाए!

मेरा मन भी कुछ चंचल है
यह सिक्त व्यथा से अंचल है,
जाने क्यों गाने के बदले
रोता सा यह अन्तस्तल है,

मैं दानी, तुम प्रिय प्रकृति दान।

समता में नाहक भरमाए!
कलिके खिलने के दिन आए!

—४६—

फिर से, सावन के दिन आए!
सजल-सजल कोमल सित श्यामल

नभ में घन घिर आए!

दिवि ने ढाल दिया उर अपना,
पलकों में पुलकित सुख सपना,
स्नेह सुधा से सिंचित कण-कण;

गीत मगन मन गाए!

तप्त धरा का अंचल गीला,
रंग-विरंगा नीला पीला,
आज क्षितिज की सीमा छूकर;

बेसुध सा लहराए!

भाव बीज का अंकुर फूटा,
विह्वल व्यथा आवरण टूटा,
प्रकृति परी ने अन्तरतम में

सोए स्वप्न जगाए!
सावन के दिन आए!

—४७—

जब याद कभी तुम आ जातीं,

मेरी वियोग विह्वल साँसें करुणा के गायन बन जातीं!

जग जाती क्षण में सुप्त व्यथा
उकसाता उर निज विगत कथा
सुख-सुधि के बादल घिर आते,

आँसू से आँखें भर जातीं!

मन मचल मरोर एक खाता
मैं पल-पल पर रोता गाता
बरबस मेरा धन लुट जाता

मोती की लड़ियाँ झर जातीं!
जब याद कभी तुम आ जातीं!

—४८—

जो बीत गई सो बात गई
जो चला गया सो चला गया!

जो तृप्त रहा सो तृप्त रहा,
जो तृष्णाकुल भटका भटका,
जो स्नेह-सना सो सिक्त रहा;
जो छला गया सो छला गया!

जो मुक्त रहा सो मुक्त रहा,
जो बंधन में उलझा उलझा,
जो मुक्ति और बंधन दोनों से;
छूट गया सो छूट गया!

जो जीवन में जीता, जीता,
जो जीवन से हारा, हारा,
जो जीत-हार से जुड़ा, जुड़ा;
जो टूट गया सो टूट गया!

जो बोध हीन सो दीन रहा,
जो आत्मशक्ति समझा, समझा,
जो काँटों में अपनी मस्ती से;
फूल गया सो फूल गया!

जो सत्य सजग सो सफल रहा,
जो भावुकता में बहा, बहा,
जो सुधि संचय में फँसा, फँसा
जो भूल गया सो भूल गया!

—४९—

विखरते ही शशि की मुसकान
सिहर उठतीं लहरें लघु लोल,
सिसक बह पड़ता पवन अजान
कुमुदिनी का मन उठता डोल!

निशा के नवल नयन में नेह
उमड़ पड़ता बन पारावार,
भीग जाता अग-जग का छोर
छलक पड़ता पलकों से प्यार!

तारिका वाला का नवगात
थिरकता परस किरण कलहास,
उमंगों में उतराते अंग
विहँस पड़ता यौवन मधुमास!

क्षीण निश्वासों में उर खोल
शून्य उठता तब अस्फुट बोल,
प्राप्त परिवर्तन की हिल्लोल
क्षणिक रे जीवन का मधु मोल!

—५०—

चल पड़ा जहान,
जग पड़ा जहान!

बंधनों को तोड़-तोड़
शासनों को मोड़-मोड़
भूख बन गई है

आज साधना महान!

बाल-वृद्ध - युवा - सिद्ध
रुद्ध-क्रुद्ध व्यथा विद्ध
चाहते सभी अभी

स्वतंत्रता समान!

जन क्रान्ति की हवा बही
है डगमगा रही मही
बादलों को फाड़-चीड़

झाँकता विहान!

बढ़ चलो जवान,
चल पड़ा जहान!

—५१—

सपन में,
प्रिय को बाँध न पाऊँ!

सब सखि हिलमिल खेलें होली
लाल गुलाल कुसुम रँग झोली
मैं बिन साजन आज कहाँ से

रँग पिचकारी लाऊँ?

उड़े अबीर रंग-रस बरसे
पुलक-पुलक मन पुन-पुन तरसे
दूर बसे चिर सुन्दर किसके

कुमकुम कुलक लगाऊँ?

गीत मधुर स्वर गुंजित जग में
फैली फाग, राग गृह मग में
रुद्ध कंठ से विरह व्यथा मैं

किसको कहो सुनाऊँ?
सपन में, प्रिय को बाँध न पाऊँ?

—१२—

स्वप्न में तुम सकुच आईं
प्राण मिलने रात होली,
जग पड़ी कलियाँ अचानक
मलय मन्द वतास डोली!

एक कर में कुसुम कुमकुम
दूसरे में रंग झोली,
मद भरे आकुल उनींदे
नयन में मनुहार भोली!

तृप्ति की तृष्णा हृदय में
अधर में आकुल पिपासा,
अंग-अंग अनंग पुलकित
मुग्ध मन में मिलन आशा!

पैर के पायल झमकते
नृत्यमय गति से निरन्तर,
रूप की साकार सुषमा
शशि किरण सी स्निग्ध सुन्दर!

उर उमंगों की तरंगों में
घुली नभ की उजाली,
आज संसृति भी सिहरती
देख पूरित प्रेम प्याली!

मैं प्रतीक्षा का पुजारी
एक पल को भी न सोया,
पा तुम्हें प्रिय पास अपने
सत्य सपने को सँजोया!

आगई तुम कह उठा मैं
किन्तु तुम कुछ भी न बोली,
स्तब्ध सा तब जग पड़ा मैं
देखता बस रंग रोली!

फिर वही शाश्वत प्रतीक्षा
औ तुम्हारी यह ठिठोली,
कह रहे सब धन्य है कवि
यह तुम्हारी स्वप्न होली!

—५३—

ऐ नंगे-भूखे कंकालों के
प्रतिनिधि कवि तू जाग-जाग,
कह दे दानवी दासता से
बस दूर-दूर तू भाग-भाग!

तूने अपने उर में अनेक
मानापमान के घात सहे,
आँसू के मनके पी पीकर
तन के कितने उत्पात सहे!

तेरे ही स्वजनों की समाधि—
पर, निर्मित हैं ये रंगमहल,
तेरे छीने अधिकारों से
शासन की सारी चहल पहल!

हैं मासहीन हड्डियाँ वही
जिनमे दधीच का पूर्ण ओज,
ऐ गायक स्वर संधान छोड़
अब और क्रान्ति की कहाँ खोज!

हे, जलनशील उच्छ्वासों से
पानी को भी कर आग-आग!

हो भस्म भूत पाखंड दंभ
जातीय वर्ग ममता निदान,
जग पड़े प्रकृति के रंध्र-रंध्र में
समता का फिर साम्यगान!

धँस जाय धरा गिर पड़े गगन
कम्पित हो जगती एक बार,
सब हैं स्वतंत्र, सब हैं समान
मुखरित हो कण-कण दुर्निवार!

तू विश्व केन्द्र की समस्वरता
अपनी तालों का कर मिलान,
पुलकित हो जग का प्राणिमात्र
लख प्राची में नव युग विहान!

बुझती आँखों में जगे ज्योति
गूंजे अग-जग में महाराग!
सोए कवि, तू उठ जाग जाग!

—५४—

स्निग्ध कितनी सरस आज की चाँदनी ?

प्रकृति प्राप्त यौवन सजी नवबधू सी
सकुच दे रही स्नेह संजीवनी !

पुलक सिक्त सहसा हुआ विश्व जीवन
सुधा-कण बरसता गगन झूम झुककर,
सहज ही सफल प्यास की साधना में
धरा पी रही मौन आश्वस्त होकर,

सभी स्वर सधे एक ही तान लय में;
मुखर हो रही रूप की रागिनी !

तरल ज्योतस्ना सिन्धु में तैरते से
युगों के छुटे मिल रहे हैं परस्पर,
न है भेद चेतन-अचेतन किसी में
सभी में जगी स्फूर्ति मादक निरन्तर,

पवन चल रहा खोजता सा किसी को;
वसंती छटा प्राण उन्मादिनी !

सुरभि की लहर पर प्रभा नाचती है
सुमन ताल पर शीश अपना हिलाते,
कली मधुभरा निज हृदय खोलती है
पलक पात के मिस सितारे बुलाते,

अंचल, चल हुए चल गए बन अचल से,
खड़े देखते सृष्टि मन भावनी !

प्राण कितनी सरस आज की चाँदनी ?

—५५—

शत स्वागत नवजीवन हे !

नव स्वतंत्रता की सुख-सुषमा ,
अखिल मनुज की गौरव-गरिमा ,
नव विकास नव पुलक प्राणप्रद ;

नव-नव भावन हे !

सम स्वर लय सम ताल-छन्द सम ,
हिलमिल आज गीत गाएँ हम ,
नव चिंतन नव सृजन नवल गति ;

जन-मन-रंजन हे !

विगत निशा नव उषा प्रकाशित ,
सब समान सब के हित रक्षित ,
नवल स्फूर्ति उत्साह नवल मति ;

शुभ सुख-सावन हे !

जगी भारती की नव वीणा ,
नाद नवल नव शक्ति प्रवीणा ,
रूप-रंग नव भाव-चाव नव ;

नव-दिन पावन हे !
शत स्वागत नवजीवन हे !

—५६—

बादरिया आँगन की!

तप्त धरा की प्यास बुझाने,
उमड़े भरे प्राण अकुलाने,
बजे मिलन के मंदिर तराने;

झड़ियाँ सावन की!

रिमझिम में बूंदों की वाणी,
कहती अपनी मर्म कहानी,
आज विरह की व्यथा सिरानी;

घड़ियाँ गायन की!

पुलकित प्रकृति बही पुरवाई,
पुतली सुधि जलकण भर लाई,
करुणा की घन छाया छाई;

लड़ियाँ भावन की!
बादरिया आँगन की!

—५७—

मुझसे ही मेरा अलख द्वन्द।
मैं मन को कितना ही बाँधूं वह अपनी गति में मुक्त छन्द!

मन के तो केवल मन ही है
मुझको तन का भी भार मिला,
मन की चिर चंचल रीत रही
मुझको बंधनमय प्यार मिला,

मैं दृश्य विश्व का एक व्यक्ति
वह स्वप्न-सृष्टि का देवदूत,
सीमित है मेरी सब गतिविधि
उसकी गति अति अद्भुत अकूत,

मैं बँधा हुआ पार्थिव जग से
वह निश्चय ही निर्बंध मुक्त,
जो मेरी पीड़ा का पोषण
उसकी सुख-सुषमा में प्रयुक्त,

बजता है जब मेरा विहाग उसका विलास स्वर मंद-मंद!

वह इस दुनिया से दूर कहीं
अपने मन की दुनिया रचता,
उसके विकार का पात्र मुझे
कह, अपनी भूलों से बचता,

मैं मन के मन का काम करूं
तो जग मुझको पागल कहता,
नित उसके बदले इस जग की
मैं कितनी बौछारें सहता!

सच सही किन्तु इसके ऊपर
सुधियों का वह संचय करता,
मैं जिसे भुलाना चाह रहा
उसमें रसमय जीवन भरता,

मन रहित बनूं तो जीवन क्या? जीवन में तन-मन विलग बंद!
मुझसे ही मेरा अलख द्वन्द!

—५८—

शरद् पूर्णिमा की छाया में
सोता गंगा का जल निश्चल,
जैसे रस का पान कर रहा
सजग समेटे कलकल छलछल!

बीच-बीच में लोल लहरियाँ
उर-स्पंदन सी उठतीं सुन्दर,
पलकों में सपनों सी चंचल
मगन मछलियाँ फिरतीं मनहर!

किरण विचुम्बित जलकण खुलते
तरलित प्रभा प्रवाहित,
आज विभा परियों से पुलकित
निर्मल जल अवगाहित!

मुग्ध किनारे जग-जग पड़ते
पा लहरों का चुम्बन,
साई सिकता अपनी छाया—
का, करती आलिंगन!

जल में थल में निखिल प्रकृति में
नव-रस का परिप्लावन,
जगती में नवजीवन जागा
मानव में मानवपन!

इस धारा सा ही शान्त स्निग्ध
अविरत गति से बह मंद-मंद,
सुख-दुख की ध्वनियों से रचता
जीवन अपना अविराम छंद!

—५९—

लो स्वर्ग उतर आया भूपर!

जगमग जगमग दीपावलियाँ,
अनुराग राग रंजित गलियाँ,
गृह-गृह में दीप शिखा दीपित;

मनहर प्रकाश भीतर-बाहर!

मिट गया दासता तिमिर अंध,
खुल गए राष्ट्र के कठिन बंध,
कण-कण में नवजीवन भरता;

पृथिवी का ज्योतित रूप सुघर!

युग-युग के कलमष को धोकर,
नव स्वर्गाभा निखरी सुन्दर,
नव प्रीति-रीति का नव निर्झर;

गाता प्राणों को छू छूकर!

धरती घर अपने ज्योति चरण,
दिवि की सत्ता कर रही वरण,
है शुद्ध-बुद्ध सस्मित मानव;

अपने अधिकारों को पाकर!

—६०—

दीप मालाओं का शृंगार।

सतरंगी प्रकाश किरणों का
नव वितान सा छाया,
सूरज, चाँद, सितारों का
वैभव पृथिवी ने पाया,

धरा को मिला नया उपहार!

स्नेह-सिक्त मिट्टी के दीपों—
में, प्रकाश परिप्लावन,
जड़ देही में होता है ज्यों
आत्मा का संजीवन,

यही जड़-चेतन का व्यवहार!

आज अवनि में उतर गगन
है सफल समोद विचरता,
अपना सब आलोक अखिल
जग के जीवन में भरता,

स्वर्ग से बढ़कर यह संसार!

दिशि-दिशि गृह-गृह गली-गली में
दीपशिखा का नर्तन,
नवजीवन की नई चेतना—
का, भव में आवर्तन,

नव स्वतंत्रता का सम्भार।
अमर यह दीवाली त्योहार!

—६१—

कितना प्यारा चाँद गगन में !

उससे प्यारा प्यार तुम्हारा हँसता मेरे मन में !

इन्द्र धनुष से सुखकर सुन्दर
लगता मुझे तुम्हारा आनन,
हंसों के पंखों से भी तुम
कोमल और अधिक पावन,

तेरे सरस परस से खिलते नये प्राण यौवन उपवन में !

कलकल का मीठा सा यह स्वर
गूँज रहा जो झरनों में,
इससे प्रिय संगीत तुम्हारा
बसा हुआ इन करनों में,

तेरे बोल बीण से बढ़कर भरते नये प्राण जीवन में ।

कलियों को तुम फूल बनातीं
फूलों को फल रुचिकर,
और फलों को स्नेह-स्वाद से
भर बिखरातीं पथ पर,

तेरे सम्मुख और न कोई स्नेहशील त्रिभुवन में ।

कितना प्यारा चाँद गगन में ?

—६२—

हे महामानव, महाकवि
हे कला के प्राण,
लिखे तुमने रक्तलिपि में
अमर अपने गान!

शब्द ध्वनि से सधी
तेरे छन्द की झंकार,
खोलती युग-युग रहेगी
जागरण के द्वार?

ऐ धरा औ स्वर्ग के
शुभ स्नेह सूत्राधार,
मनुजता के हृदय के
समता सने उद्गार!

दुख व्रती सर्जन समुत्सुक
शील के आगार,
भारती के भाग्य, कविता—
के सतत् शृंगार!

कवि कमल कुल सूर्य
साधन शक्ति के अविराम,
युग प्रवर्तक सिद्ध साधक!
बार बार प्रणाम!

—६३—

विश्व चलता जा रहा है!

पथिक बढ़ता जा लगन से
दिवस ढलता जा रहा हैं।

जानता मानव युगों से
सहज ही मरणत्व अपना,
किन्तु अब तक भी न छूटा
मृत्यु-भय से हृदय कँपना,

पंथ का पार्थिव प्रलोभन
सतत छलता जा रहा है।

स्वयं के सुख के लिए
तुमने बनाया नीड़ न्यारा,
बन गया सहसा वही अब
विवश बन्दी-गृह तुम्हारा,

स्वार्थ भीषण शाप बन कर
साथ पलता जा रहा है!

सान्ध्य नभ की लालिमा में
निशा धूमिलता समाई,
पंक ने पूछा जलज से
कौन मलिना घड़ी आई,
स्वप्न क्रम जीवन जगाए

आँख मलता जा रहा है।
विश्व चलता जा रहा है।

—६४—

तुमने मुझको भुला दिया
पर मुझे याद अब भी आती है,

जीवन की धूमिल घनमाला—
में चाँदनी चमक जाती है!

मेरे बुझे दीप को तुमने
स्नेह दान दे पुनः जलाया,

जल कर जग कर जगतीतल में
उसने निज प्रकाश फैलाया,

तेरे तरल स्नेह से पूरित
जलती तेरी सुधि बाती है!

अन्तर्तम की मर्म वेदना
तममय जिसकी काली छाया,
अपने भीतर संचित रखकर
मैंने यह प्रकाश है पाया,

तेरी तो यह निर्मल गाथा,
किन्तु जलन मेरी थाती है!

मेरी मिट्टी में सहसा तुम
बनकर पुलकित प्राण समाईं,
जल-जल जग को जगमग करने
का स्नेहिल साधन बन आईं

तेरी करुणा के कल गायन
मेरी साँस-साँस गाती है!

—६५—

खिली फागुनी चाँदनी मधु बरसती
सुनो तो कहूँ मै तुम्हारी कहानी
कहो तो कहूँ आज अपनी कहानी !

पलक में मदिर स्वप्न की
स्निग्धता तुम,
अधर में पुलक प्यार की
तुम पिपासा,
सुमन में मिलन की
अलख अर्चना तुम,
वचन में प्रणय गान की
मुग्ध भाषा;
तुम्ही प्राण में ध्यान में कल्पना में
तुम्ही साँस में साधना बन समानी !

इच्छा, क्रिया, ज्ञान की
प्रेरणा तुम,
मनोभाव की भूमिका
रूप शीला,
वृहत् विश्व की चेतना
चित्र सी तुम,
ललक लालसा की
ललित लोल लीला;

तुम्हीं अस्ति औ नास्ति की सूत्र-संज्ञा
तुम्ही वासना भावना की भवानी !

विवश बंधनों की
मधुर मुक्ति हो तुम,
अमर अंध विश्वास की
छत्र छाया,
चराचर महानृत्य की
मोहनी लय,
विषम-सम सधी रागिनी
मूर्त माया;
तुम्ही सृष्टि की नाश की मूल मेधा
तुम्ही मानसी शुभ्रता की हिमानी!

सलज स्नेह की ज्योत्स्ना
निर्झरी तुम,
हलाहल - अमृत की
मनोमय विकलता,
प्रभा प्रेय की सिद्धि हो
श्रेय की तुम,
हृदय की विजय बुद्धि की
तुम विफलता;

तुम्ही त्याग की भोग की तृप्ति-तृष्णा
अखिल स्पंदनों की तुम्ही राग रानी!
सुनो तो कहूँ मै तुम्हारी कहानी,
कहो तो कहूँ आज अपनी कहानी!

—६६—

सब कुछ सहते जाना होगा!
यह वह पथ है जिस पर चलकर
मानवता को पाना होगा!

तुझे प्रशंसा के सपनों के
उपवन यहाँ अनेक मिलेंगे,
अपमानों के कटु कंटक कुश
पग तलवों में मिले झिलेंगे,

बोल न पाएगा पर अपनी
ध्वनि जग तक पहुँचाना होगा!

विश्व-वाटिका की हर क्यारी
अब न्यारी रहना भूलेगी,
एक सूख जाए बिन सींचे
तब न दूसरी फिर फूलेगी,

पंकज को पथ दे पर तुझको
पाटल भी अपनाना होगा!

युद्ध विटप में शान्तिलता फिर
अमर बेलि बनकर फैलेगी,
वसुधा के आँगन में सुख से
पावन परिचित श्री खेलेगी,

अब समत्व ही धर्म बनेगा
कल्पित धर्म मिटाना होगा!

शिल्पी का सौन्दर्य देखने
सब देवालय तक जाते हैं,
श्वेत, श्याम शंकर, नटवर की
नई-नई प्रतिमा पाते हैं,

बाहर तो देखते चलो पर
अन्तर भी अपनाना होगा।

इस अनन्त पथ पर चल चलकर
जाने कितने थक कर सोए,
जग से दूर न जाने कितने
एकाकी ही जाकर खोए?

जितना मग तू चले, लौटकर
फिर सब को ले जाना होगा!

—६७—

साधना का सुफल सुन्दर !
स्नेह-सागर में उमड़ती
मिलन की मादक तरंगे,
पा गई हैं इस विरह में
भावनाएँ नव उमंगे,
दूर तुम जितना रहो—
पर, पास मैं रहता निरन्तर !

कंटकों में हँस रही हैं
कामना की कुसुम कलियाँ,
मधुसनी बेसुध पड़ी हैं
कल्पना - चंचल तितिलियाँ,
सुधि सरसता से हुई अब
मधु मलय, उच्छ्वास मनहर !

मिलन का मधुमास पुलकित
हृदय-उपवन में चिरन्तन,
प्राणपिक प्रियनाम लेकर
कर रहा कमनीय कूजन,
बन गईं सब सुख कथाएँ
गत व्यथाएँ अब सकुचकर !
साधना का सुफल सुन्दर !

—६८—

तब मैं तुम्हें याद करता हूँ!

जब फुहार के शीतल चुम्बन
दग्ध हृदय को करते,
दादुर अपने कठिन कंठ से
मन को अनमन भरते

चपला चंचल बीच-बीच में
जब हँसकर छिप जाती,
पुरवइया निज सरस परस से
सोई सुधि उकसाती;

किन्तु दूर तुम सोच-सोचकर
जब आकुल आहें भरता हूँ!

जब घन घूंघट खोल चाँदनी
स्नेह - दृष्टि बरसाती,
चकवी अपने विकलकूल पर
जब सिर धुन पछताती;

स्वप्न लोक में खुलता मन का
जब छलना मय क्रीड़ा गार,
मिलन माधुरी की छाया में
जब सुन्दर होता साकार;

किन्तु, दूर तुम सोच-सोच कर
जब क्षण-क्षण जीता मरता हूँ!

जब जागरण गीत नभ गुंजित
हँसती ऊषा आती,
तन में मन में गगन अवनि में
जब प्रकाश भर जाती;

जब चेतना विफल जीवन जय
प्रणय पिपासा लेकर,
तृप्ति खोजने के हित बढ़ती
अपना सब कुछ देकर,

किन्तु, दूर तुम सोच - सोच कर
जब मैं डगमग पग धरता हूँ।
तब मैं तुम्हें याद करता हूँ!

—६९—

यह भादों की रात!

काले घुँघराले घन घिरते,
मत्तनाग से नभ में फिरते,
पछुआ की सरसर सपाटसे;

कँपते तृण - तरु-पात!

झिल्ली की झनकार झनाझन,
मुखरित करती मधुवन कानन,
चपला चमचम चमक कर रही;

अन - चाहा उत्पात!

अंधकार सागर लहराता,
जीव-सृष्टि भयभीत बनाता,
तम में प्रियतम की यह दूरी;

तन-मन का आघात!

तेज तीर सी यह बौछारें,
सब वियोग की विह्वल मारें;
अब भी आओ तो जीवन है;

जीवन - धन अवदात!
यह भादों की रात!

—७०—

मेघ मंदिर में गगन के देवता की बीण,
छेड़ती मल्लार धरती रात दिन क्षण क्षीण!

अवनि उर में सुप्त अंकुर पा रहा वरदान,
भूमिका जिस जन्म की है सतत् सृष्टि विधान!

मृत्तिका में प्राण भाषा भाव की मनुहार,
गा रही रिमझिम स्वरों में पुलक प्रकृति उदार!

चंचला चपला चली ले आरती का साज,
दे रहा नभ समुद भू को सृजन का बल आज!

खुल गए तम पटल करती चाँदनी अभिसार,
मुक्त मन बंदी बना रस-रूप-वर्ण-विहार!

खिंच गया नीहार नीलम क्षितिज के उस पार,
भर गया भ्रम, दूर प्रियतम ज्योति जीवन-सार!

आदि अंत अनन्त आकुल जगत का विस्तार,
आकलन अमला कला का चेतना सम्भार!

—७१—

दीपशिखा की श्री सुषमा से
आज धरा जीवन आलोकित,
मिट्टी में नवचेतन प्लावित,
मानव भव विहसित चिर शोभित!

ज्योत्स्ना सजल बिछी लो भूपर
तरलित तारे कंपित विस्मित,
जन भू के आलोक वसन को
छू-छूकर समीर सुख सुरभित!

निखिल प्रकृति दीपों की माला
पहिन स्नेह सरगम में मुखरित,
कलि-कुसुमों के कोमल अवयव
मुग्ध मिलन मधु भर-भर विकसित

तान तरंगित सृजन स्रोत सब
मनुज विश्व का नव उन्मीलन,
प्रणयाकाँक्षी स्वर्ग ताकता
धरती का अभिनव तन-यौवन!

कवि छवि के भव बंधन छूटे
सफल साध, हँस मुख जग आँगन,
फुल्ल मधुप मन का सित सरसिज
आत्मभाव से पुलकित आनन!

धरणी अब भरणी बन प्रमुदित
भाव सत्य सपनों से जीवित,
जड़-चेतन समभाव समन्वित
बहिरंतर सम्बल शत ज्योतित!

यह भारत की अभिनव होली !
छुटी रंग-रस की पिचकारी,
हास-विलास केलि किलकारी,
मंद पवन उन्मद गति चलता;
फागुन कोयल बोली।

रँगे कली के अधर लजीले,
फँसे गली के मधुप छबीले,
सजी स्नेह की नवल नेह की;
गेह-गेह की टोली !

केसर कुमकुम रंजित आनन,
फाग-फाग गुंजित गृह-कानन,
अखिल धरा का यौवन पुलकित,
भरी मनुज की झोली !

अब स्वतंत्र हम सुख-साधन में,
बतरस आकुल आराधन में,
अंग-अंग में रंग-रंग की;
हँस-हँस मलते रोली !

आज लाज तज मधु के मानी,
प्रणय प्यास परिणय वरदानी,
भंग-चंग में चढ़ी स्वजन की;
श्लथ बोली अनमोली !
रँगीली मन-मन की होली !

—७३—

छलकती मन की मीठी बात!

नयन सलिल की आभा देकर
सहज सँजोए जो मुक्ताफल,
सरस चेतना गति के साथी
मुक्त मीन से चंचल-चंचल;
छिप न सकेगा अपनेपन का यह भावन अवदात!

बोल अमोल न इनसे बढ़कर
करुणा का लहराता सागर,
अग्नि तप्त तृष्णा से तिरकर
भरता जीवन रीती गागर;
मन के मानसरोवर के वर हंस बंश विख्यात!

एक बूंद में सृष्टि समाहित
एक बूंद में विवश विनाश,
ऐसे साधन का पा सम्बल
मानव फिर क्यों विकल उदास,
इनसे बढ़कर और न कोई सुख-संचय-संघात!

काव्य कला के आदि प्रवर्तक
मानवता के मुकलित मान,
स्निग्ध स्नेह की शाश्वत सरिता
भव वैभव के गीले गान;
बनती इनसे स्वर्ग सीढ़ियाँ मिलती प्रियतम प्रीति विभा
छलकती मन की मीठी बा

—७४—

गाँधी बाबा सुनो पुकार !

आरत भारत में छाया है
वही पुराना हाहाकार !

अभी वही क्रम भूख-प्यास का
और नग्नता का उपहार,

शोषण श्रम का पोषण बल का
दलबन्दी का विकृत विचार !

जिसकी लाठी भैंस उसी की
न्याय घूस का नाम भला है,

कहो और कुछ करो और कुछ
शासन की बस यही कला है !

तेरे वे दरिद्र नारायण
और अधिक दुखियारे,

दीन-हीन वे मनुज रूप में
पशु के पशु बेचारे !

धनियों का बढ़ गया और धन
दुखियों का दुख दूना,

नेता सब राजा बन बैठे
कौन सुने सब सूना !

कुछ बोलो तो राजद्रोह है
मौन मनुज जीवन धिक्कार,

बोलो कैसे आज करें हम
नव स्वतंत्रता का सत्कार ?

—७१—

फागुनी सातें सिहरता प्रकृति का प्रिय गात,
शीत की वर्षा हिमालय में हुआ हिमपात!

चाँदनी भी सिकुड़ती सी है खड़ी सरिता किनारे,
ज्योत्स्ना के मधु मिलन को जल-हृदय पलकें उँघारे!

बालुका में बिछ गई सहसा किसी की करुण बाणी,
बादलों से ढक गया नभ मंद रिमझिम पुलक पानी!

वायु की बतरस भरी किलकारियाँ ज्यों वेग मन का,
फिर वही मुसकान शशि की, किसलयी कंपन त्रिजन का!

नाव की छप-छप तुम्हारी नूपरों का गान गुन गुन,
जग पड़ा कवि का हृदय कलरव भरे गुंजार सुन-सुन!

एकनिशि में शीत, वर्षा से सजा उन्मत्त यौवन,
रात भर की बात भावुक के लिए संसार जीवन!

प्रात रवि के साथ निकला मैं तुम्हारी खोज लेकर,
अर्चना की आरती में स्नेह का सर्वस्व देकर!

तुम मिली पर दूर चलकर रात के पिछले पहर में,
मैं शिथिल पग सो गया उस स्वप्न की सूनी डगर में!

जग, चला पाया तुम्हें तब लालिमा नभ की निराली,
किरण कर से पोंछती थी जब धरा के अश्रु आली!

तुम तिमिर में तैरती मैं ज्योति का प्रतिरूप पावन,
ब्रह्म मै, माया मनोहर तुम बनी व्याकुल प्रतिक्षण!

कर रहीं अनुसरण ऋतु का मैं पुरुष सब जानता हूँ,
विश्व तुम में लीन इसको मै कभी से मानता हूँ!

साम्य में दोनों सधें तब फिर बने जो स्वर्ग सपना,
साथ में दोनों, हमें क्या शीत, वर्षा, खोज, कँपना!

कह गई क्षण में प्रकृति जो यह सँदेशा है तुम्हारा,
चिर पथिक जीवन प्रणय का प्यार ही केवल किनारा!

—७६—

भूल न सकती है जीवन भर
विरह काल की होली,
दूर बसी तुम प्राण, प्राणदा
वायु विफल ही डोली!

खूब सुना मैंने मधुपों का
गुन गुन गाना गाना,
कलियों का मधु वितरण देखा
सुमनों का मुसकाना
किन्तु न भाते मुझको गाने
हास-लास भी फीका,
जब तक अपने स्नेही के सँग
लगे न कुमकुम टीका;
तब तक गान-तान सब झूठे
कटु कोयल की बोली!

शस्य श्यामला लहराता जब
धरती का आँचल धानी,
वह बरसाती रात दादुरों—
की, करकशतम वाणी,
तुम डरतीं थीं मैं कहता था
मुझको तो यह भाती,
अन्तरतम के तार-तार छू
सोई सुधि उकसाती,
आज नहीं तुम रंग-रास के
साज व्यर्थ, खाली झोली

कभी न कुछ भी अप्रिय लगता
जब संग में तुम होती,
आँसू भी प्यारे लगते हैं
मन के उज्ज्वल मोती,
तुम ही सुख हो और सभी दुख
अब की मैंने जाना,
होली और दिवाली दोनों
मन के ताना-बाना,

तुम्हें खोजती फिरतीं घिरतीं
मेरी आँखें भोली!

—७७—

गूंजता जग फाग मग-मग
आगई फिर आज होली,
कोकिला कल कंठ से मधु
मुग्ध मोहिल बोल बोली!

रँग गये डोरे नयन के
बयन के बल व्यंग छूटे,
दृष्टि के शर, स्नेह के वर
रंग-रस के उत्स फूटे;
लाज के बंधन खुले
घूँघट तुले सज गई टोली!

लुट गया यौवन कलीं का
तृप्ति का गुनगान गुनगुन,
मधुपदल करता मनोहर
झूमता आकाश सुनसुन;
वायु भी मधुकण वितरती
सुरभि भार सँवार डोली!

रूप - राग - पराग - क्रमक्रम
मंद मृदु किलकारियों से,
भर गया मन, रँग गया तन
रंग की पिचकारियों से;
प्रणय प्लावन में छैल की
गैल में छिन गई झोली!

एक दिन यह मधु मिलन का
वर्ष में हँस केलि करता,
दीन-दलित मलीन जन-जन में
नया अनुराग भरता;
मुक्त मन का पर्व पावन
प्रीति की मनुहार भोली!

सब गले मिलते सभी से
द्वेष-छल का भाव भागा,
एक हैं हम, एक जीवन
एकता का चाव जागा;
प्रेम की पोषक कला यह
कवि कबीर अबीर घोली!

—७८—

पिछली रात साथ में सुख से बात-बात में बीती,
आज नहीं तुम सब कुछ सूना जीवन गागर रीती !
तुम पावस की पुलक, मरुस्थल की मै विकल पिपासा,
तुम सावन की स्निग्ध सजलता, मै चातक की आशा !

तुम बसंत की सुख-सुषमा श्री, मै पतझर की बाणी,
तुम कवित्व की कोमल कलना, मै बिन लिखी कहानी !
तुम प्राणों की प्राण प्रेरणा, मै केवल कल काया,
तुम स्वरूप की अखिल धारणा, मै चिर संगिन छाया !

तुम बीणा की मधुर तान लय, मै तारों की तड़पन,
तुम आधार विम्ब जीवन का, मै प्रियदर्शी दर्पण !
तुम सहास मृदु मंद चाँदनी, मै चकोर चित चंचल,
तुम यौवन की अलस अरुणिमा, मै बाताहत अंचल !

तुम भव विभव पराभव की गति, मै पद चिन्ह तुम्हारा,
तुम वाणी का अर्थ रसायन, मै प्रयोग-पथ-पारा !
तुम अछोर अस्तित्व अखिल, मै मधु संचय अभिलाषा,
तुम मन का माधुर्य मनोमय, मै अनपढ़ की भाषा !

तुम साधक की सिद्धि चेतना मै साधना सकामा,
तुम सँयोग की तृप्ति तपस्या, मै लालसा ललामा !
अब न देर प्रिय करो पधारो तुम बिन क्षण क्षण भारी,
आजा आँगन की उजियारी दूर भगे अँधियारी !

—७९—

तारिका सी कौन तुम जीवन क्षितिज की छोर में ?

रात भर चलता रहा प्रिय
पंथ पर जिसके सहारे,
स्वप्न की साकारता जब
पा गई परिचित किनारे;
धुल गए रंगीन बादल
खुल गया आकुल अँधेरा,
ज्योति के नव पल पसारे
हँस रहा प्राची चितेरा;

बढ़ चलो कहकर अचानक खोगई जो भोर में !

कर समर्पण रवि किरण को
स्नेह मय अपना उजाला,
दे गई वह दीप्ति दिन को
मुग्ध जिससे मेघ माला;
विश्व की विस्तीर्ण सीमा में
स्वयं को कर विसर्जन,
त्याग ही में तृप्ति का—
जिसने किया अधिकार अर्जन;

जो जड़ी करुणा कनी सी नयन नभ की कोर में।
तारिका सी कौन तुम जीवन क्षितिज की छोर में ?

—८०—

नया बादल आ गया,
धरा का प्रतिदान पावन निखिल जग में छा गया!

चंचला चपला चमकती
हँस रहा जैसे अँधेरा,
श्वेत नभ सहसा हुआ फिर
बूंद का बिखरा बसेरा;

सजल रिमझिम सरस सरगम गीत पावस गा गया!

सुधि जगी बहता समीरण
खुल गए दृग भरे अंजन,
आज नभ की नीलिमा में
तुल गए कितने निरंजन;

नाचते वन मोर चातक पीर का पल पा गया!

झुका सा नभ उठी धरणी
मुक्त दिशि भुज बंध खोले,
मिलन की विरदावली
दादुर बहादुर बोल बोले;

नेह नव मधु तृप्त तृण-तरु कृषक मन को भा गया।
नया बादल आ गया।

—८१—

यह बरसाती रात मिलन की
चौगुन चढ़ी पिपासा,
इस अषाढ़ के पहले दिन से
प्राण मुझे थी आशा!

तुम आओगी घटा घिरेगी
मन-मयूर का नर्तन,
देख-देख तुम मुस्काओगी
नभ की चपला बन-बन!

तुम आओगी रिमझिम की
नूपुर करधनी बजाती,
जगमग जुगनू ज्योति जलाती
प्रिय आरती सजाती!

तुम आओगी सावन होगा
मन भावन की कजली,
तुम्हें देख बरबस बरसेगी
नभ की प्यासी बदली!

हर्ष हिंडोले की पेंगों से
तुम भयभीत विलोचन,
प्राण, प्राण को तृप्त करोगी
दे-दे मधु आलिंगन!

किन्तु सभी कुछ नहीं एक तुम
मेरे हित जग सूना,
उमड़ चली बरसात न आई
घुमड़ घिरा दुख दूना!

अदरा के बदरा घहराए
भर भदरा इठलाता,
बिना तुम्हारे मेरा चातक—
चित, पल चैन न पाता!

स्वाती की रसमाती बूंदे
लेकर शीघ्र पधारो,
पानी में भी प्यासा मरता
आओ मुझे उबारो

—८२—

मंद मदिर बहती पुरवाई !

सावन परम सुहावन साजन
याद तुम्हारी आई !

तन-तन पुलक कुलक मन-मन में;
मोर शोर करते वन-वन में,
आँखों में बरसात गगन में;

श्याम बदरिया छाई !

मुकलित मधु मालती मनोहर,
गंध केतकी मिली धरोहर,
सुख-सौरभ से सिक्त धरा को,

नभ की आज बधाई !

किन्तु, किन्तु मै जग में केवल,
प्राण, प्राण बिन वारिद विह्वल,
अपने रंध्र रंध्र को मैंने;

पावस पीर पिलाई !

श्यामकुंज वन यमुना श्यामा,
अग-जग की कवि छवि अभिरामा,
शान्त शिथिल तन पर परिप्लावन;

मन ने बूंद न पाई !
मंद मदिर बहती पुरवाई !

—८३—

बोल मन, पावस की पहचान,

श्यामल सजल मेघ दल के दल
चपला की मुसकान!

इन्द्र धनुष सिर मुकुट मुग्धकर,
सित बलाक कल कंठ हार वर
हरिताञ्चल की छाया छू कर;

तज चातक अभिमान!

नृत्य निरत वन मत्त मोर गन,
सजे कुसुम गिरि कानन मधुवन,
द्वार खड़ी बरसात सिहरती;

अब तो छोड़ गुमान!

हुई साँझ जुगुनू जगमग जग,
मुक्त पंख खग नयन नीड़ मग,
अब न भीगने से भग सकते;

भीगो भूल अपान!
यही तो पावस की पहचान!

—८४—

एक थोड़ी रात, फिर बरसात की,

मैं बना परवस वियोगी
कौन मुझ सा पातकी ?
सरस सावन दूर मन भावन
पवन पूरब परीक्षा,
स्निग्ध सौरभ सिक्त श्लथमन
मगन बन करता प्रतीक्षा;

प्राण प्रण पर रात भर फिर बादलों से बात की।

स्तब्ध निशि दिशि शान्त उर को
चीर चातक बोलता है,
मर्म करुणामय छिपे जो
हृदय में, सब खोलता है;

याद तुम आईं अचानक प्रेरणा अज्ञात की।

निखिल नभ में नील श्यामल
मेघमाला झूलती है,
मंद-गंध विखेर कोमल
केतकी कल फूलती है,

प्रणय वंचित रात करुणा बन गई अब प्रात की।
यह अँधेरी रात, फिर बरसात की।

—८५—

बरसो,
बादल बरसो!
बरस सको तो एक बार फिर
नई चेतना बरसो।

जीवन तरु जग मरुथल निर्बल,
शुष्क स्नेह बिन छिन-छिन विह्वल,
भर दो नवजीवन से मधुवन
सजल करों से परसो!

बरस सको तो एक बार फिर
नई कल्पना बरसो।

फल-दल-सबल साम्य-सुख सम्बल,
भाव-विहग मुद मंगल कल कल,
कर दो पुलकित वन निर्जन जन
समतल सुख-रस सरसो।

बरस सको तो एक बार फिर
नई भावना बरसो।
बादल बरसो।

—८६—

शुभ्र शरद ऋतुओं की रानी।

काजल धुले खुले मितघन दृग
लहराता आँचर धानी!

फूले काँस सुमन उपवन-वन,
खंजन मंजु मुदित मन धावन,
सरव हंस कलकंठ मनोरम;

हिला हार मनमानी!

मंद-मंद गति सरि जल निर्मल,
सर-सरोज कम्पित उरोज कल,
समुद कुमुद मुख-हास वास युत;

सकुच प्रणय प्रण ठानी!

दुपहरिया मालती मुग्ध अलि,
केशर शर ठाढ़ी रोमावलि,
शरद इन्दु से सुधा विन्दु पा;

बन जन-गन कल्याणी!

रूप-रंग-रसमय जगजीवन,
बही सुरभि-सुधि स्निग्ध समीरण,
वर विलास अवकाश पास प्रिय

शीत प्रीत वरदानी!
शुभ्र शरद ऋतुओं की रानी!

—८७—

वस्तु सत्य की विजय हो गई
भाव सत्य की हार,
कलाकार चाकर बन बैठा
रुपया रस की धार।

सिर पर चढ़ी पेट की पीड़ा
मोहमयी अभिलाषा,
धिक् कवि तुझको बोल न पाया
अपने मन-की भाषा!

जनता का जन ताका गौरव
बना दिया सरकारी,
जिसके बल पर आज बिका तू
उसकी दशा विचारी!

चाँदी के टुकड़ों पर टूटा
कला बला सी टाल,
आया सम्मुख खुला भेड़िया
खोल मनुज की खाल!

लिए विभीषण की भीषणता
पर से हाथ मिलाया,
दीन समझ दुतकारा उसको
जिसने तुझे जिलाया!

आत्मघात को तुमने समझा
भ्रम से आत्म विकास,
बंचक वाक् देवता के तुम
लक्ष्मी के प्रिय दास!

वाणी के वरदानी तुमसे
कभी न थी यह आशा,
अमृत को अलगाया तुमने
लेकर गरल पिपासा!

आज तुम्हारे शब्द-जाल से
स्वजन मछलियाँ फँसती,
तेरी कृतियाँ तुझे देखकर
मुँह बिचकाकर हँसती!

जग जीवन में कवि न रहे अब
वरना लड़ते भिड़ते,
वाणी के वर शब्दों के शर—
से जग रसमय करते।

ये बातें तो रहीं दूर की
हे अंधों में राजा,
छोड़ लालसा एक बार फिर
जग-जीवन में आजा.

तान गान के मंत्र मनोहर
भौतिकता विष हर ले,
अपने वरण चरण के पीछे
मानवता को कर ले।

बढ़ चल हँसते समरस पीते
कवि की कला दिखाते,
साथ मरें सब साथ जिए सब
साथ सनेह सिखाते।

तब कवि की छवि कली खिलेगी
मन मधुपों का मेला,
अहे नहीं तू यंत्रकाल का
एक यंत्र अलबेला।

—८८—

संगम पाकर गंगा का जल
मद मंदिर गति बहता,
खिलकर खुलकर बढ़कर मानो
आसमान से कहता।

तेरे चाँद सितारे सारे
उगे हृदय में मेरे,
मेरे कूल छितिज छूते हैं
बढ़ते बादल घेरे।

घेरे हूँ मैं इस अग-जग को
करुणा जल के बल मे,
आसमान तू आसमान है
सदा शून्य के छल से।

छल से सधे हुए अधिकारों—
के, मुँह मैंने फेरे,
फेरे हैं दिन मानवता के
मिट्टी के बहुतेरे।

बहुतेरे कहते हैं बादल
तुझको जल का दानी,
आज बरस ले प्राण परख ले
किसमें कितना पानी।

दबी साँझ बादल बढ़ आए
छुटी बूंद की छहरें,
सहसा संगम बना रणस्थल
लड़ी लपकती लहरें।

क्षण भर डटे कटे फिर बादल
गंगा जल दम भरता,
शान्ति-शान्ति की स्वर लहरी में
शान्ति सुधा रस रसता।

यह संगम संस्कृति सम पावन
कवि का गंगा-पूजन,
छन्द-छन्द से फूट पड़ा त्यों
युद्ध बंद कल कूजन।

कवि का मंत्र न माने दुनिया
पर रण मत्त पिशाचों,
मनु का मानव जाग पड़ा है
अपना पहा बाचों।

नर से नर अब लड़ न सकेंगे
घिर कर बादल जैसे,
खुलकर भरी समुद किलकारी
हँस बोला जल ऐसे।

उठी भारती बीणा वादिनि
सामगीत फिर गाती,
नर से नर की जीवन भर की
भय की भीत भगाती।

हिन्दी के सुमनों में मेरा—
जल, करुणा जल बनकर,
निस्व-विश्व परिप्लावित करदे
शुद्ध बुद्ध अविनश्वर।

उस दिन साथी संगम से
वरदान यही था पाया,
कवि का कर्म कठिन होता है
कविता लेकर आया।

अच्छा संगम को प्रणाम है
और एक आश्वासन,
अब न चाबुकों से घोड़ों का
पाठ पढ़ेगा जन-मन।

जन-मन-गन अधिनायक जय हे
भारत भाग्य विधाता,
प्रथमवार अवसर आया है
बनो विश्व के त्राता।

—८९—

छिपकर कौन हृदय में आता !

मेरे मन की मधु गलियों मे
घूम घूम फिर फिर गाता !

मैं वियोग विह्वल विथकित सा,
रह जाता बस मौन-चकित सा,

क्यों उदास प्रिय पास तुम्हारे
कह नचता मुसकाता ।

किस अव्यक्त व्यक्ति की छाया,
किस छलना की मोहन माया,

मेरे रोम-रोम में विजड़ित
मैं बरबस लुट जाता !

मेरा ही चित चंचल होकर,
अपनेपन की सब सुधि खोकर,

चेतन का साक्षी बन कहता
छोड़ जगत से नाता !

छिपकर कौन हृदय में आता !

—९०—

याद है वह रात ?
जो हमारे साथ हँसती थी विमल विधु गात !

पास में बैठी हुई तुम
गुनगुनाती गीत अपने,
देखता था मै तुम्हारी
छवि, सुमुखि, साकार सपने;

हो गए थे एक तन-मन चाँदनी से स्नात !

छू मुझे उन्मत्त करता
था, तुम्हारा चल अलक दल
धवलिमा को कर रहा था
जो सकुच कर सघन श्यामल;

पा रहा था सुरभि जिससे मंद शीतल वात !

दे तुम्हारी करुण कोमल
गोद में सिर भार हँसकर
मैं गया था भूल क्षण भर
विषम विश्व प्रहार कटुतर

क्षणिक जीवन की मधुरता ज्योत्स्ना अवदात !

नयन की प्यासी पुतलियों में
तुम्हें कर बन्द सुन्दर,
रच रहा था मधु मिलन के
छंद मैं मन में निरन्तर;

कह, उठीं तुम दूर बैठो देखती है रात !
याद है वह बात !

सुखद याद आती,
दुखद याद आती।

नयन सीपियों के तरल मोतियों को—
प्रणय पंथ में हँस लुटाती-बिछाती!

चला जा रहा मौन मैं स्तब्ध होकर
विरह की अमा से उलझते-सुलझते,
अडिग धैर्य से प्रेम पाले हृदय को
लिए साधना से सधे पैर बढ़ते;

कलित कामना की कुसुम तूलिका से—
मिलन चित्र कितने बनाती-मिटाती!

अमर एक विश्वास से नेह नभ में
उड़े प्राण पंछी पुलक गीत गाते,
निखिल नीलिमा पार कर ज्योति जग से
सहज साधना का सफल मीत लाते;

मदिर मानसी कुंज में स्वप्न सोई
चकित चेतना को सुलाती-जगाती!

विकल विश्व की वेदना बोध बीणा
स्वरों में मिलन औ विरह का किनारा,
अमर साध के सत्य को साथ लेकर
बही आ रही स्नेह की स्निग्ध धारा;

हृदय की विवशतामयी मुग्धता को
मधुर तान लय से हँसाती-रुलाती!

मधुर याद आती
मदिर याद आती।

—९२—

बीत चली बरसात शरद की आभा लगी झलकने,
स्वच्छ हुआ आकाश कुमुदिनी सर में लगी विहँसने।
स्वर्ण शस्य से लदे धान के खेत लगे लहराने,
शरद इन्दु शीतल किरणों से सुधा लगा बरसाने!

खुलीं कली की मधुमय गलियाँ छलिया मधुप लुभाने,
स्नेह सुप्ति को सरस करों से वायु लगी उसकाने!
स्नेहिल सुधि की सहज रश्मियाँ बन चाँदनी विहँसती,
मुग्ध मालती में मधुकर की पाखें बरबस फसती!

रुक जाते टुक लोचन लखकर चंचल लोल लहरियाँ,
शरद स्नान को नभ से उतरीं जैसे बादल परियाँ!
बिछी बालुका की सफेद सी चादर चित को हरती,
कंठ लगी सारस की जोड़ी मर्म कथा सी कहती!

खंजन की चंचलता में घिर चलते नयन तुम्हारे
काँस-साँस की अलख धवलिमा साक्षी बीच हमारे!
सर सरोज हिलहिल कर कहते यह मिलने की बेला,
शरद वरद लेकर आया है मधुर मिलन का मेला!

चिर विवेक की गरिमा से भर हंस मधुर स्वर गाते,
मानस छोड़ यहाँ हम आए पग-पग मोती पाते!
खिले शुभ्र शतदल में नभ ने मधु वर्षण की ठानी,
यह न रूठने के दिन रानी बातें हो मनमानी!

लो वरदान शरद का सचमुच शीत भीत भय भीता,
कंपित अधर खोज ही लेंगे अपने मन का चीता!
खड़ी प्रकृति आरती सजाती सँभल पुरुष अभिमानी,
विरह मिलन की बतरस बस है प्राप्त शरद की रानी!

—९३—

कभी चेत में चैत की चाँदनी से
हुई भेंट तो बात चलती तुम्हारी.
तभी तो उसी क्षण विलख बालुका से
मधुर नृत्य करती उभरती खुमारी!

बिना कुछ पिए मस्त मैं मौन होता
सुहागिन किरण की परी पास आती,
तुम्हारी कथा जो व्यथा की जवानी
उसी में लिखे गीत संगीत गाती!

पड़ा स्वप्न में अनमना सोचता मैं
कुलकती हुई जल लहरियाँ जगाती,
मिला स्वर उन्हें नूपुरों से तुम्हारे
मुझे याद है या नहीं पूछ जाती!

सजल मेघ से मित्रता है तुम्हारी
चकित चंचला की तुम्हीं ज्योति दानी,
बनी वीर बरसात पाकर तुम्हीं से
सँजोई हुई आँख की पीर पानी!

दिए इन्द्रधनु को सभी रंग तुमने
गगन में मगन मन सुनाता कहानी,
विकल स्नेह की बूंद पर बूंद गिरती
तुम्हारे सहज स्नेह की बस निशानी!

झनक झींगुरों की खनक चूरियों की
लड़ी मोतियों की धारा सिक्त सोती,
तुम्हें खोजते नाचते मोर वन में
तुम्हारे लिए रात बरसात रोती!

शरद पूर्णिमा तो सहेली तुम्हारी
तुम्हारे लिए आरती दीपलाती,
मदिर मंद मुसकान पथ में बिछाकर
अकेला मुझे देखती लौट जाती!

तुम तो शरद, ग्रीष्म, बरसात में भी
अखिल विश्व की एक तुम रूप रानी,
तुम्हारे लिए व्यग्र है विश्व कण-कण
अकेली तुम्हीं हो सभी से विरानी!

अलख व्याप्ति की प्राप्ति की प्रेरणा तुम
तुम्हारी पलक सृष्टि लय का किनारा,
तुम्हीं द्वैत की दृष्टि देती सभी को
थका विश्व मैंने तुम्हीं को पुकारा!

—९४—

आज धरा ने छीनी नभ से
जगमग दीपावलियाँ,
सूर्य चन्द्र भी सँग में आए
फूटे बन फुलझड़ियाँ।

यह प्रकाश, सौन्दर्य, स्नेह
उल्लास ज्योति की छाया,
आलोकित ऐश्वर्य अवनि का
देख गगन सकुचाया!

मिला स्नेह जल उठी आरती
दीपशिखा लहराती,
तमस् मिटा मिट्टी के कण-कण—
में, नव ज्योति जगाती!

यह भारत का ज्योति पर्व है
मन की उज्ज्वल आशा,
नव प्रकाश की बस प्रकाश की
आकुलतम अभिलाषा!

विश्व व्याप्त इस अमा निशा में
ज्योतित जीवन भरना,
अन्तरतम में सोए तम को
जग से बाहर करना!

ज्योति वरण कर ज्योति चरण धर
ज्योति रूप ले अपना
दीवाली कर अंधकार को
जग जीवन में सपना!

यही हमारी अजर साधना
अमर दीप की ज्वाला,
मृण्मय को जीवन वर देती
यह दीपों की माला!

—९५—

माया मृग मरीचिका में फँस
भटक रहा जग जीवन,
उमड़ रहा दुख का भव सागर
चिताकुल त्रिभुवन चेतन !

सत्य सती बंदी विललाती
करती अविरत क्रन्दन,
रावण राजनीति जन भक्षी
दृश्य दिखाती भीषण !

साहस लक्ष्मण लुंठित भू पर
नर-बानर सब विह्वल,
जग की इसी दिशा-विदिशा से
जगे राम अविचल बल !

विजये विजय तुम्हारी तब है
अग्नि परीक्षा देकर,
शक्ति-शील-सौन्दर्य समन्वित
विलसेा विजयी होकर !

नहीं सदा सुधि सी आओगी
गत-युग वैभव प्रतिमा,
हमें विजय दो हमसे लेलो
वही पुरानी गरिमा !

—९६—

भारतेन्दु पूर्णेन्दु तुम्हारी सृजन शक्ति अभिनय अविकम्पित,
तेरी प्रतिभा की स्वर्णिम किरणों से सब अग-जग आलोकित !

हिन्दी नभ में घिरे पराभव के थे काले मेघ भयंकर,
नवयुग की सूचना तुम्हारी वाणी ने दी बढ़कर तत्पर !

भरे भारती की वीणा में तुमने अपने कोमल नव स्वर,
नई कल्पना, नई चेतना, नई भावना अनगिन अक्षर !

तेरे गीतों के सुमनों की मोहक सुरभि चतुर्दिक छाई,
ललित कला के नायक नटवर तेरे यश की बजी बधाई !

मिला तुम्हीं से अखिल देश की व्यापक वाणी को आकार,
मुक्त किए तुमने जन-मन के व्याकुल बंदी हृदयोद्गार !

तेरी धरी नींव पर मुखरित शत कंठों का कलरव मनहर,
कविमनीषी तुम आए थे नई धारणा ले धरती पर !

सजा स्नेह से नव पलकों पर सपनों की मादक मनुहार,
किया तुम्हीं ने जन-जीवन को फिर से शब्दों में साकार !

हुआ तुम्हारे हाथ स्वर्णयुग का नूतनतम उद्घाटन,
मुक्त देश का कविकुल करता पुलक तुम्हारा पूजन वंदन !

युग-युग के स्रष्टा द्रष्टा तुम साहित्यिक नवरस निर्माता,
हिन्दी के इस भव्य भवन के तुम हो शिल्पी आदि विधाता !

बनी भाव जीवन की स्वर लिपि साधक तेरी अमर कहानी,
लो प्रणाम आशीर्वाद दो जय हे कृती विश्व कवि ज्ञानी !

—९७—

छोटा सा दिन काम न होता
बड़ी रात कब मेरी,
वह तो पल में सो जाती है
लिए याद बस तेरी।

रात दिवस भी रहे अपने
सपने सभी विराने,
मिलन कूल का पता न मिलता
हम मँझधार भुलाने।

अब तो यही साधना मन की
जीवन लय की लहरी,
मिटा बनाकर पुनः मिटाती
सुने नहीं कुछ बहरी!

तुमको पाकर मिला सभी कुछ
मैंने कभी न जाना,
तुम थीं तब केवल तुमको ही
अब अपना पहचाना।

मैं मिट गया तुम्हीं में कब का
तुम मुझको हो भूली
सहज समर्पण महाराग को
कौन रंग दे तूली?

यह जाड़े की शीत वात भी
कुछ भी बात न सुनती,
यौवन की ऊष्मा की आकुल
अपनी ही धुन धुनती।

विजये तुम जय विजय दे गई
मैं हारा का हारा,
रामराज है, जीत-जीत है
यह तो केवल नारा।

वह समत्व एकत्व प्राण का
मन ममत्व का मानी,
अब भी पीड़ित अहंभाव से
अपनापन अभिमानी!

राजनीति जादूगरनी बन
मानवता को छलती,
रणचण्डी का सिर पर ताण्डव
रक्त का दम भरती!

यह वियोग जाड़े की रातें
अन्न वस्त्र की कमियाँ,
कब तक पेट भरेगी बोलो
केले की कल छिमियाँ।

विजये वर दे भारत कर दे
फिर वंशीवट वाला,
गो-गोवर्द्धन गाँव-गाँव में
नन्द गाँव का ग्वाला।

दैहिक दैविक भौतिक तापों
में, कुछ तो कम कर दे,
रामराज के किसी अंश का
फिर से हमको वर दे।

वर दे बने वीर जीवन में
संस्कृति के वरदानी
विजये मुखरित हो जन-जन में
तेरी विजय कहानी!

—९८—

सचमुच सकुच स्वर्ग बेचारा
इस धरती से हारा,
दिया भेंट में जग को अनगिन
दीपों का उजियारा !

शिखा-सूत की पहन चुनरिया
स्नेहिल कम्पित काया
ज्योति-किरण-कर से समेटती
अंधकार की माया !

हँस-हँस स्वर्णाभा छितराती
ज्योति-वृष्टि परिप्लावन,
बीत गई बरसात किन्तु
यह नव प्रकाश का सावन !

मन, मनभावन दिव्य दृष्टि से
देख रहा भव जीवन,
अखिल विश्व में भरना उसको
नव विहान के नव क्षण !

शस्य श्यामला स्निग्ध उज्ज्वला
दीवाली की दुलहन,
दीपदान से आज खोलती
नव चेतन नव लोचन!

छूकर चल आँचल प्रकाश से
गगन अवनि का कोना,
अमा पूर्णिमा के पुलिनों को
किया एक पद टोना!

ज्वाल-जाल में बाँध विश्व
दे नव विकास की समता,
भूमि बधू दे रही विश्व को
नव प्रकाश की क्षमता!

ज्योति पाश अभिनव प्रकाश से
एक अखिल मानव जग,
नव अभिसार दिवाली करती
आलोकित प्रणयी मग!

—९९—

जल उठे दीप जगमग सजी आरती,
प्रिय प्रभा विश्व में भर रही भारती।

तम मिटा स्निग्ध लौ की लगन लग गई,
प्राण ज्योतित हुए कालिमा भग गई।

शिखा में घुली तोमतम की निशानी,
अमा बन गई पूर्णिमा की कहानी।

विजय ज्योति की हो गई आज भूपर,
अँधेरा लिए मौन आकाश धूसर।

पा नया आवरण मृत्तिका हँस पड़ी,
यह नए रूप में ज्योति की नव घड़ी।

स्नेह सींची हुई दीपमाला खिली,
लो किरण की परी जीत जग को मिली।

इसी देश का यह परम पर्व न्यारा,
बनेगा यही विश्व का नयन तारा।

—१००—

याद फिर आती तुम्हारी !
पा हृदय का स्नेह सम्बल

जल उठी बाती तुम्हारी !

आज आलोकित अमर क्षण
विगत युग का राग लेकर,
चेतना का शाप श्यामल
वेदना सुधि भाग देकर;

समय की गति में मुझे तो
मिल गई थाती तुम्हारी !

क्षण गया मन किन्तु फिर भी,
खोज का व्रत ले मचलता,
नयन में वह छवि सिहरती
प्राण में मधु की सजलता;

बन गया जीवन अचानक
साध रँग-राती तुम्हारी !

विसुध बन सुधि को सँजोता
मैं निरन्तर चल रहा हूँ,
द्वैत से अद्वैत जीवन को
विहँसता छल रहा हूँ;

हो स्वयं उन्मत कहता
याद मदमाती तुम्हारी।
याद फिर आती तुम्हारी !

—१०१—

अयि ज्योति किरण,
नव ज्योति किरण।

भरती हो मरती धरती में
अपने कोमल कर से जीवन!

सज स्वप्न सजीली आँखों में,
गति शिथिल विहग की पाँखों में,
बुझती जीवन की राखों में,
तुम लिखतीं अपना मधुर हास;

कण-कण में करती मधु वर्षण!

सुमनों में भर भर नव विकास,
जागृत कर उर की सुप्त श्वास,
तन-मन को देतीं अमर लास,
तुम स्वर्ग परी उतरीं भूपर;

करती नित नव रस का वितरण!

तुम तो गति-पथ में चिर नवीन,
नूतन में भी तुम पुराचीन,
तुम आदि रहित तुम अन्त हीन,
तुम बनती प्राणों का प्रभात;

जन-जन के यौवन का चेतन।
तुम आओ नव-नव ज्योति किरण!

—१०२—

प्रात की किरणें सुनहली
हिलीं बन्दनवार बनकर,
आगया मधुमास नवयुग
का, नया उपहार लेकर !

अखिल अंगों में धरा के
आज वासंती सजी है,
मलय की मनुहार मधुकर
गीत की वीणा बजी है।

खुल गया घूंघट कली का
विहँसती मधुमय जवानी,
मिल गया मन कह रहा कन—
कन, मिलन की मधु कहानी !

आम्र वन में मुग्ध मंजरियाँ
सुरभि के द्वार खोले,
स्नेह स्वागत को सँभलती
तितिलियों के पंख डोले।

माधवी की सौंस में उच्छ्वास—
यौवन का पिघलता,
प्रीति की परछाइयों में—
पल रही सुख की सजलता!

यह वसंत बहार नव—
अभिसार की मधुमती माया,
कर रही पूजन मदन का
विश्व-छबि की कुसुम काया!

देखता कवि भावना-दृग—
खोल चारो ओर अपने,
बन गए नवयुग चरण के—
चिह्न, व्याकुल विगत सपने!

कोकिला कलकंठ से—
कविकंठ के मधु बोल बोली,
प्राण के पतझार ने—
भरली समुद सुख-सुमन झोली!

—१०३—

धुंधला सा यह चाँद गगन में चढ़ी फागुनी रातें,
आओ छत पर बैठ करें कुछ मन की मीठी बातें!

पावस के पनियारे लोचन राह ताकते हारे,
असफलता में रहे सिमटते मन मयूर झख मारे!

सीसी करती बहीं शरद की पागल प्रणय पुकारें,
बीत गया मधुमास लिये मन की मन में मनुहारें।

फागुन भी मस्ती का मौसम, अच्छा किया पधारीं,
राग-रंग की अब की होली होगी सफल हमारी!

अब गुलाल से गाल लाल होने में तनिक न देरी,
जाने कहाँ कहाँ तक होगी इन हाथों की फेरी।

बहुत दिनों पर तुम आई मैं भूखा प्यासा हारा,
प्रिय बन सकूं तुम्हारा प्रेयसि दो यदि आज सहारा!

मैं भूला भटका अटका सा मारा मारा फिरता,
अहंकार के घटाटोप से मौन गगन मन घिरता!

ऐसा क्या अपराध? गीत मैं अब भी लिखता जाता!
पत्रों से पैसे मित्रों से वही प्रशंसा पाता!

पिछले दिन नेता साहब ने बड़ी बधाई दी थी,
मुझे होश था उनके संग में थोड़ी ही तो पी थी!

अफसर और मुसाहिब सारे पारे-से ढुलते हैं,
मेरे प्रीत गीत प्लावन में मिश्री से घुलते हैं!

वे फैशन की महिला जिनका अच्छा सा कछु नाम,
'धन्य धन्य' से धरा हिलाती देती भर भर जाम !

पर तुम हो नाराज साज सब मेरे बने बिगड़ते,
बाहर से आवाजें आतीं, 'पतित हुए क्यों सड़ते ?'

तुम्हीं कहो कब मैंने तुमको घटिया गीत सुनाये,
तुमसे ही पा सहज प्रेरणा मैंने तार चढ़ाये !

जो सुर तुमने चाहा मेरी विकल बँसुरिया बोली,
क्यों न आज फिर इन गीतों से प्राण पँखुरियाँ डोली !

क्या न प्राण से प्यार प्राण का पंकिलता मुरझानी,
क्यों न जगे पंकज के प्रेमी नव प्रभात गुण ज्ञानी !

चूक तुम्हारी या हो मेरी अब न विवाद बढ़ायें,
आओ कुछ दिन साथ रहें घन तम का भूत भगायें।

ना जी, यहाँ कहाँ लक्ष्मी का लुटता खुला खजाना,
तुम वैभव में बिके बटोही नित का आना जाना !

मुझे चाहिए साधक साथी वाणी का अभिमानी,
वाद्ययन्त्र से बढ़कर जिसका कण्ठ काव्य वरदानी।

जो जन जन के साँस स्वरों में बोले जन की वाणी,
मेरा प्रियतम वही एक कवि, युग-मर्यादा-मानी !

रहे न कुछ अधिकार तुम्हारे बेच दिया अपने को,
धन के मन से तोल सत्य अपनाया, तज सपने को !

तुम कवि के कंगाल रूप को धनी समझकर ऐंठे,
सुख की सहज कल्पना में ही प्राप्त छोड़कर बैठे !

शर्म-शर्म मधुगीत सुनाते धधक रहे अंगारे,
स्वार्थ सने तुम आँख मूँदते बहते रक्त पनारे !

तुम्हें चाहिए निजता प्रभुता परियाँ रंगमहल की !
मरे मनुजता भले तुम्हें धुन अपनी चहल पहल की !

सबको छोड़ स्वयं में रमकर भी कविजी कहलाते,
इस सम्बोधन से मन ही मन स्वयं तुम्हीं घबड़ाते !

कवि का छोड़ धरातल तुमने नभ की कसी सवारी,
ऐसे वायु विकम्पित प्रेमी से मैं हरदम हारी !

नहीं, सुनूं आह्वान और आने में देर लगाऊँ,
सुमिरत सारद तुरत सिधाई का उपहास उड़ाऊँ ?

वायु वाष्प के छैल छबीले तुम अपने में राजा,
शीशा तो देखो जब मुझसे कहते आ जा, आ जा !

महा भूमिका महायुद्ध की करती है आह्वान,
नरपिशाच की लार टपकती रक्तपान अनुमान !

खड़ी मौन मानवता तकती धरती थर-थर कँपती,
कवि के सृजन करों की गूंथी माला मन में जपती !

बलि के बली बढ़ो तो आगे एक बार ललकारो,
शान्ति सुधा की सबल तरंगों का सागर छलकारो ?

अहे, बुद्ध के वंशज घर घर डोलो अपनी बोलो,
ऐसा करो रमों प्राणों में जीवन संगी हो लो !

वैभव छोड़ मुझे जो भजता मैं उसकी ही रानी,
एक हाथ में आग सँभाले एक हाथ में पानी।

साहस हो तो कविर्मनीषी परभू और स्वयंभू,
मिट्टी की पीड़ा में पिघलो यह है प्राण प्रसू !

धर धरती मुझसे मिलने की क्षमता भी बढ़ जाती,
मही मनुजता फूलों सी खिल हारों में लहराती !

रक्तदान से, प्राणदान से, गानदान से चाहे,
युद्ध बीच जो आज खड़ा हो शान्ति सिन्धु अवगाहे !

सामूहिक जीवन की रक्षा में जो मरता हँसता,
युग जीवन में उसी एक कवि की मैं अमर सफलता !

सूर्य ग्रहण यह निशा दिवस की राहु राक्षसी छाया,
तुम प्रकाश के प्रहरी दीपक अपना क्यों न जलाया!

तिमिर तोम में दीप शिखा की कवि की उज्ज्वल थाती,
लेकर अन्तःपुर में पैठे बन्दी दीपक बाती!

बुझे दीप जब प्रणय शलभ की करते मुझसे चर्चा,
ठगी तुम्हारी स्वयं ठगी सी केवल बौद्धिक अर्चा!

मैं समवेदनशील बुद्धि की बनूं कहो क्यों चेरी?
क्षमा करो अब मैं जाती हूँ बजा करे रणभेरी!

रणभेरी सुन मैं भी जूझूँ यही तुम्हें क्या भाता,
काल कालिका बनी प्रियतमा कैसे भाग्य विधाता?

अच्छा तो, रण रंग खेलने को मैं बाहर आऊँ,
रणोन्मत्त हो झपटूँ जूझूँ कवि की कला दिखाऊँ?

नहीं, नहीं जूझो मत बूझो कौन चाहता लड़ना,
कौन चाहता मानवता के पथ प्रकाश को छलना!

उसे टोंक दो ताल ठोंक दो कवि हो तो जुट जाओ,
उसे घोंट दो या विरोध में स्वयं तुम्हीं घुट जाओ!

अखिल श्रान्तिहर निखिल क्रान्तिकर शान्ति पर्व के गाने,
गा न सके यदि भारत का कवि तो सब व्यर्थ तराने!

बसुधा के निरीह नर नारी होंगे साथ तुम्हारे,
युद्ध बन्द के छन्द बनेंगे गति के सबल सहारे!

रूस साथ है, चीन साथ है, जावा और सुमात्रा,
इनको लेकर बढ़ो साथ ही सफल तुम्हारी यात्रा!

तभी भेंट फिर होगी कवि जी शान्ति सदन में सुख से,
तुम न सही पर मैं विषण्ण हूँ युद्ध भाव के दुख से!

शान्ति हुई तो कान्तिमयी मैं साथ तुम्हारे हूँगी,
जीवन के अविरल प्रवाह की स्नेह-सुधा भी दूँगी!

छोड़ अन्यथा कायर साथी रहना भला अकेला,
विदा विदा जाती हूँ जागो जगी जागरण वेला !

रुको आज कल जाना अब तो सभी तुम्हारे मनका,
शान्ति दूत बन मैं घूमूँगा प्रतिनिधि हो जन-जन का !

अरे साधना के पहले तुम सुफल चाहते कैसे ?
बनो मिलन के योग्य बताया मैंने तुमको जैसे !

तब मैं जयमाला लेकर आऊँगी बिना बुलाये,
गाँव-गाँव घूमूँगी तुमको अपने गले लगाये !

मधु मरंद मादक मृदंग की रंगमंच में थपकी,
देकर तुम्हें सुनाऊंगी मैं लोरी जीवन जय की !

तुम कवि, मैं कामायनि कविता रूप रंग में रस में,
भुज भर भेंट सकेंगे जग को स्नेह शान्ति के बस में !

—१०४—

मचल रही है आज कल्पना नभ के छल छोरों में,
देख रहा हूँ नया नया कुछ आँखों की कोरों में।

घिरी घटा, पर जल के बदले इसे आग बरसाना,
सिंचन-सृजन छोड़कर बादल गाते ध्वंस तराना।

तो क्या ये उच्छ्वास विरहिणी के गोपी बाला के,
अरे तापसी की तृष्णा क्या पास नंदलाला के?

नहीं, नहीं, यह क्षुधा मनुज की बढ़ी नागिनी बन के,
देखो तो जो उदर मस्त वे व्यस्त दीखते सनके!

हो हल्ला कोलाहल कड़कन आज भूख भयकारी,
अपने को खाकर ही जीती मानवता बेचारी।

अहे मनुज को मनुज खा गया सुनते सभी कहानी,
क्रान्ति कराला भीषण ज्वाला की अभिनव अगवानी।

नभ के दूत भूत धरती के भीषण काण्ड करेंगे,
देव-दनुज का द्वन्द्व मचाकर मारे और मरेंगे!

दोनों का ही नाश मानवी सृष्टि विश्व में जेता,
समरस की सौगन्ध समझ लो इसको जग के नेता।

रक्त मांस के कर्दम में भी धँस कर जो न अघाते,
शोषण की सुषमा से शोभित फूले नहीं समाते!

उनके रोम-रोम में शत-शत तीर चुभाने वाला,
तड़प रहा है तिमिर बंध में कोमल नया उजाला!

जनता का बल छल से लेकर उसको मूर्ख बनाना,
नारकीय यह नीति पाप का पचड़ा बहुत पुराना!

अब न चलेगी रोड बन्द है, भूखों की ललकार,
स्थापित स्वार्थों के सेवी वृथा डाँट फटकार!

भोजन पहली शर्त व्यवस्था जनता के शासन की,
सखे महाभारत की सुमिरो गाथा दुश्शासन की!

नया महाभारत भारत में भूखों को कर आगे,
रचने की हम सोच रहे हैं जागे सभी अभागे!

यह न भूमि का युद्ध भूख का कठिन क्रुद्धतम होगा,
बहुत दिनों तक तुमने जमकर शोषण का सुख भोगा!

अरे कुरूप कबंधों केवल पापी पेट तुम्हारे;
सावधान अब चल न सकोगे लेकर स्वार्थ सहारे!

भली भक्तकों की यह टोली रक्षा का दम भरती,
वायुयान में सही सलामत जनता भूखों मरती!

भाषण नहीं चाहिए भोजन, भूखा है इन्सान,
जीने के हित मरना जिसका सरबस जीवन दान!

अब न आसरे और सहारे की करता वह माँग,
आज जला ली उसने अपने अन्तर्मन की आग।

स्वयं जलेगा, किन्तु जलाकर तुमको भी कर राख,
एक क्रान्ति ही अमर शान्ति है; उसकी निश्चित साख।

एक आदमी भी यदि भूखा तड़प-तड़प मर जाता,
अपनी विवश टूटती साँसों का जादू फैलता।

डिनर डकार कार में बैठे अब न तुम्हारी त्राण,
दूर हटो, आ गया सामने नवयुग नया विहान!

नया राग है नई व्यवस्था सब को भोजन पान,
जन-शासन के सहज अर्थ की कवि की यह पहचान!

— १०५ —

कामायनी कला के कविवर नवयुग के अधिनायक,
ज्योति-पंख तुम विश्व नीड़ में आत्मभाव के गायक !
अहंभाव की विकृति पिपासा से था विश्व अधीर,
दिया तुम्हीं ने स्वर समता का उसको प्राण समीर !

बनी तुम्हारी कविता जग के जीवन की नव चाह,
हुआ तुम्हारे चरणों से ही गतिमय नव उत्साह !
गूंज उठा वरदान सदृश्य फिर गीत ज्ञान कानों में,
ध्वनित आज भी वह स्वर लहरी नित नव नभ गानों में !

हृदय-बुद्धि की मिलन माधुरी गति का निखिल निदान,
मानवता की मुक्ति-भुक्ति का सुख-दुख रहित विधान !
अभिनव पथ पाथेय साधना सधी स्नेह की बाती,
समवेदन आलोक निखरता चिति की चेतन थाती ।

व्यथित विश्व के सात्विक सुख का कर अक्षय-शृंगार,
पग में मधु भर गए पारकर दुख दाहक अंगार ।
आज तुम्हारी वर्ष गाँठ जो खुले बहे रस-धारा,
बजे मोहिनी मुरली कवि की पाप-ताप क्षय सारा !

देश कल्पना काल परिधि से व्यक्ति चेतना उठकर,
लोक-हृदय की लोक-चेतना में मुखरित हो सत्वर ।
सौमनस्य की शीतल छाया की प्रतिभा वरदानी,
जयशंकर प्रसाद ले आए हिन्दी-हित कल्याणी !

—१०६—

मिट्टी की यह माँग
चाहती धरती धड़कन,
नव जीवन की साँस सँजोए
अखिल भुवन का कण-कण !

रक्त सिंची उर्वरा हो उठी
नव-सुमनों की रानी,
पृथिवी पुत्रों के स्वागत की
रचती नई कहानी ?

अहे मृत्तिका के तन में भी
चमकी चित चिनगारी,
मानव तुम चेतन के साक्षी
आज तुम्हारी बारी !

भूमि-भाग के सब अधिकारी
अखिल जीव इस जग के,
तुम न स्वार्थ से सने खड़े हो
कंटक बन युग मग के !

तुम न जगे तो मौन भंग कर
यह मिट्टी बोलेगी,
क्रान्ति कारिणी मर्म व्यथा के
तरुण पृष्ठ खोलेगी ।

*

—१०७—

कुछ वर्ष पूर्व
भारत के मन में—
जगी कल्पना स्वतंत्रा की;
झलकी छाया प्रतिमा !

उसे प्राप्त करने के
पथ में,
उसके बलिदानी इति
अथ में,
लुटे न जाने कितने
तनके मनके सुख-संसार;
बने मृत्यु अभिसार !

पर,
जन-मन का संकल्प,
अल्प भी, कभी न निष्फल
तोड़ बाँध बाधाओं के
वह बढ़ता अविकल;
फोड़-फाड़ पत्थर की कारा
ज्यों बहता निर्मल जल;
संघर्षों की गरिमा !

वही कल्पना
आज हुई साकार,
भार हलका कर
उस अपार अनुदार गुलामी का;
अब स्वतंत्र हम
जन की सफल साधना में सम,
जीवन यति में
मन की गति में
लिये विश्व मन का मधुमय क्रम;
नव स्वतंत्रता की महिमा !

किन्तु,
किन्तु न छुटा स्वभाव
घाव भी अब तक बाकी,
यह दुराव दीनता देश की
किसने हम पर थापी ?
हम निरन्न, निर्वस्त्र
अस्त्र भी नहीं पास में
जिसको कर धर
छोड़ अग्निशर जग में पुजते;
मन की चर्चा कौन ! हमें तो—
मिली न तन की तनिमा !

आज कल्पना फिर करनी है
अपनी ही करनी भरनी है
लेना है स्वतंत्रा के सँग
समसुख की मधु-साँस;
यही आज के इस अणु युग की,
अखिल जीव-जीवन की जग की,
जनता के मन की कण-कण की;
साधक भारत की अणिमा !

लौ में पिए साँझ की लाली
यह कुटिया का दीप,
अभी से जलता धीरे-धीरे !

मंद मदिर मुस्कान
उपेक्षा जैसे अंधकार की,
इसमें भरी ज्योति जीवन की
शत-शत गति-आलोक धार की,
अभी से चलता धीरे-धीरे !

झपट झंझा के झोंके झेल,
पतिंगों के बलिदानी मेल;
जवानी की ज्वाला का खेल—
खेलता, बढ़ता द्युति की ओर;
अभी से रजनी को खलता है ?

निर्वासित यह राजमहल से,
बहरी शहरी चहल-पहल से,
इसे चाहिए स्नेह वर्तिका
संजीवन की सहज स्वस्तिका,
झिलमिल की मस्ती में हँसता
विद्युत मौलिक सीप,
भरता सुधि साँस कँपता है !

डगमग पगधर,
रात पार कर,
प्रात वात—रथ पर ऊषा को
देख समर्पण करता है,
प्रेम के पलने में पलता है;
यही तो सधी सफलता है !

—१०९—

आज हुई अर्चना ऋचाओं से
सुख स्वतंत्रता के शुभ स्वर की,
वर्ष गाँठ है उसकी
जादू के जीवन की वर की!

खिला मुक्ति सित शतदल,
भुक्ति भ्रमर गुंजित,
सिंजित जीवन अनुराग अतल!

सत्य-अहिंसा की विद्युति से
स्वस्थ भारती का तन,
साम्य भाव ले मिला विश्व में
मुक्ति मधुर शाश्वत मन!

शब्द-शब्द पर छन्द-छन्द पर
बन्द-बन्द पर वीणा की झंकार—
उठ रही देश के अन्तस्तल से!

सामगीत के,
परम प्रीति के,
श्रद्धामय जीवन मंगल के,
कूजित पिक-उर मधुर कंठ
शुचि शान्ति सँदेशा देता!

सँभल विश्व
मानवता के मानो का,
संस्कृतियों से समवेत सभी दानो का,
विश्व-शान्ति का भारत सारथ होता !

जन-जन के मन-मन का
मधुमय बन्धन,
जीवन स्यन्दन,
अपने कर में लेता;
भारत गीता गेता !

सर्वे भवन्तु सुखिनः
सर्वे सन्तु निरामया
गूंज उठा भारत के स्वर में
अखिल विश्व यह नया-नया !

यह छन्दों के छन्द,
मुक्ति के मादक मधुर तराने,
गूंजे कवि के कल कंठों में
समरसता के गाने;
विजय जय मानवता की !

बाहु में भर चाँदनी तरु सो गए!
स्वप्न विहगों के खुले पर
नील नभ में खो गए!

बेसुध धरा का गात,
सरिता सिहरती अज्ञात,
शरमा गई जैसे बात;

सजल तारक नयन शत-शत
धूल का मुँह धो गए!

किरण केशी रात,
करती दूर दिवि की बात;
सुधि की साधना छवि स्नात,

स्नेह के संकेत फूलों में
हँसे मधु बो गए!

जगती नीड़ की जब चाह,
ओठों में सिसकती आह,
पाता मुक्त मन तब थाह;

ओस आँसू दीन दुनिया—
की दशा पर रो गए!

द्वैत यह चलता बराबर,
रात-दिन होते धरापर,
सब बँधे फिरते चराचर;

लौटते सब स्वर्ग का
सन्देश लेने जो गए!

—१११—

भर अलख उदासी जगती में
जाने सन्ध्या किस ओर गई,
वह डूबी, डूबा रूप-रंग
सब की रग-रग झकझोर गई !

किसने निर्जन को प्यार किया
अनगिनती तारे टूट चले,
मैंने भी तुमको याद किया
तब बाँध अनेकों फूट चले !

स्नेहिल सुधि की लहरों में पड़
काली नागिन फुफकार उठी,
सिहरा तन, मन के साथ तभी
अन्तर की ध्वनि झंकार उठी !

लो बही वायु खुल गए मर्म
उद्वेलित लहरें उछल बहीं,
सुख के स्वर की साधना लिए
ममता मनुहारे मचल रहीं !

खस गया चंचला का घूँघट
घिर घूम घटाएँ घुमड़ पड़ीं,
मुदती पलकों के रंगमंच—
पर, पल की परियाँ उमड़ पड़ीं !

घन-दृग की तरल सजलता से
गीली गीली सी रात हुई,
जब आग हृदय की जली-बढ़ी
नभ की करुणा बरसात हुई !

—११२—

सुषमित शरद की शर्वरी !

कुसुमित धरा के गात पर,
यह ज्योत्स्ना बस रात भर,
ले कनक किरणों का तुम्हारा हास—

छाई रही आशा से भरी !

चित की चकोरी साधना,
मन-मीत की आराधना,
तिरती तरसती नील नभ की गोद में—

आकुल-नयन तारा तरी !

मैं बालुका में तीर पर,
कण की दहकती पीर पर,
अपनी व्यथा के अंक पढ़ने में लगा—

तब रात रानी हँस झरी !
स्नेहिल शरद की शर्वरी !

—११३—

जागो प्राण के जलजात!

राग-रण का,
फाग कण का,
स्वाँग पूरा स्वार्थ गण का;

आज मानव की विजय में दिवस उल्कापात!

डूबता दिन,
डूबता मन,
साँझ जैसे काल नागिन,

सिन्धु की गहराइयों से उठ रही है रात!

यह अँधेरा,
बस बसेरा,
पर कटे का कौन डेरा?

साँस में भरती दिशाएँ वेग झंझावात!

धन्य रे तम.
मिला प्रियतम,
उड़ सकेगा बलि विहंगम;

मृत्यु की परछाइयों में मुक्त करुणा स्नात!

विश्व मरघट,
अस्त्र अटपट,
राख से उगता अक्षयवट,

क्षितिज की अमराइयों में हँस रहा नव प्रात!
फिर क्या आज भय की बात!

—११४—

एक दिन योंही चले जब—
साथ, हँसकर याद है?

चल पड़ी शीतल सिहरती वात,
नींद से भीगी पुतलियों में हँसा नव प्रात;
राग रग-रग में नशीला प्यार बन,
भर गया चुपचाप जैसे मलय मे उपवन;

आज ऊषा का नया शृंगार है
कह पड़ा था, याद है?

लू लपक कर तानती भ्रू भंग,
एक ही क्षण में दुपहरी चढ़ी क्रुद्ध भुवंग;
धूल से धूसर दहकते नयन से,
प्यास की पीड़ा सँजोए बोल बाँधे बयन से;

आज मधु मध्याह्न का संभार है
कह पड़ा था याद है?

साँझ ही जब रात का नव रूप धर,
घने काले केश अपने दृष्टि पथ पर खोलकर;
बिछ गई तम को लिए निज गोद में,
काल बाला सी निगलने लगी सब को मोद में;

प्रात होगा बस यही आधार है
कह पड़ा था याद है?

सहज गति की मधु मुखरता से सजी,
'बढ़ चलो' लो प्राण की वंशी बजी;
शेष जग में आज भी गुंजार है
प्रेम-पथ में क्या विजय क्या हार है?

एक हम हैं, एक ही उद्गार है
कह पड़ा था याद है?

—११५—

आज कैसी चाँदनी ?

शरद ऋतु की रात है
घिर रही बरसात है
तूफान है उत्पात है

तड़प किरणें बन गईं हँसती सजल सौदामिनी !
यह रँगीली चाँदनी ?

चाँद की भी शान है
नयन की पहचान है
किरण धनुष बान है

बादलों के फूल वन में खिल रही है यामिनी ?
यह लजीली चाँदनी ?

दिशा जगी कली धुली
हिली मिली भली तुली
बूँद-बूँद में घुली

शरद में बरसात की सिहरी सलोनी कामिनी ?
यह नशीली चाँदनी ?

—११६—

होली प्रेम पर्व की रानी,
बोली कोइल कलि मुस्कानी !

राग-रंग यौवन उमंग की,
रचना नव मुक्तक प्रसंग की,
अंग-अंग मादक तरंग की;

कहता मधुर कहानी !

अलि के गीत अधर कलि दल के,
हुए एक स्वर समरस छलके,
मिलन मोद रज कण में झलके;

करते सब मनमानी ।

मंद पवन आँचल लहराता,
प्रकृति-पुरुष प्रणयी का नाता,
निरावरण मधु वरण विधाता,

प्रिय क्यों पानी-पानी !

यह अबीर अनुराग साज का,
मुक्त भाव शृंगार राज का,
कवि के मधु स्नेहिल समाज का;

प्रणय-पुलक परिज्ञानी !
होली, प्रेम पर्व की रानी !

—११७—

कभी-कभी मैं इस शरीर से
दूर, बहुत ही दूर—
पारकर देह-प्रदेश
उर्द्धगति मन को छूता।
बढ़ता आगे और—
शून्य में, सृष्टि निलय में
सुख-सुविधा को छोड़
स्वयम्भू मैं समत्व में धँसता।
यह केवल आलोक
अमर आत्मा की शीतल छाया
इस निवास में
व्यक्ति प्राण का पता नहीं है
कहाँ विचारी काया?
दर्शन चकनाचूर
देह से दूर, बहुत ही दूर।

यह शीतलता और
और है मेरे घटकी
यहाँ छलकती रहती क्षण-क्षण
जीवन रस की मटकी
यहीं मिला विश्वास

साधना पूरी
सबके सब हैं एक
व्यर्थ की बनी बनाई दूरी
छुटा स्वार्थ परमार्थ सामने हँसता।

यहाँ सभी कुछ सब का अपना
एक सभी का सुन्दर सपना
स्वयं समर्पण प्राप्ति सभी की

विशद विश्व व्यक्तित्व
व्यक्ति को धारण करता
अरे भ्रम कितना क्रूर
सत्य से दूर, बहुत ही दूर।

गया अहम्
शाश्वत सुख देकर
सामूहिक आनंद
निरानंद हो मैंने पाया
सब सुख का छंद
मनुज की यही चरम उपलब्धि
प्राण में आज प्रण भरपूर
पास सत् के असत्य से दूर, बहुत हीं दूर।

—११८—

तुम्हारी सुधि की यह बरसात

रिमझिम में पायल का कल स्वर,
आँचर सा लहराता अम्बर,
श्याम स्निग्ध बादल कच कुंचित;

अंग-अंग जलजात!

पल्लव पाणि कुसुम कोमल तन,
बोल अमोल मधुप-मधु गुंजन,
हास-विलास केलि क्रीड़ातुर;

हंस, बलाक विभात!

दिव्य दृष्टि सर निर्झर झर-झर,
करुणा के सुख स्रोत मुग्धकर,
सरस स्नेह से सिक्त मही तल,

आशांऽकुर अवदात!

हरी तीज कजली कल कूजन,
विद्युत छवि सतरँग अवगुंठन,
शस्यश्यामला पुलकित मृदुमन;

पलकपात दिनरात!
तुम्हारी सुधि की यह बरसात

जीवन का आधार बनी तुम!

दिशाहीन जर्जर नौका की
करुणामय पतवार बनी तुम!

विगलित प्राण पुलक से भर-भर,
दे विकास का अजर-अमर वर,
सुख-सुषमा से सिक्त हृदय कर
तन की मन की अपने पन की

रचनामयि मनुहार बनी तुम!

स्वप्न स्वर्ग की निधियाँ सुन्दर
उतरीं भूपर दिव्य चरण धर,
मिलन मोद कंपित सचराचर;
प्राण-प्राण की अन्तर्वासिनि

मन-मन का अभिसार बनी तुम!

विहसित सुमन सुरभि श्लथ कण-कण,
आज युगों से बीते मधु क्षण,
विश्व विमोहन यह आकर्षण;
सुप्त शिथिल मरुथल-मधुवन श्री

अनचाहे का प्यार बनी तुम!

लहराते तृण तरु, वन उपवन,
खुलते युगल चेतना बंधन,
जड़ में भी जगता नवचेतन;
अखिल सृजन की सूत्रधारिणी

सफल स्नेह सम्भार बनी तुम!
जीवन का आधार बनी तुम!

—१२०—

प्रिय मधुबन में होली।

कलि-कलि नवरस ले इठलाती,
गीत-प्रीत अलि-अलि को भाती,
सरस परस कल किसलय कंपित;

मल मल कुमकुम रोली।

जुही, प्रणय पलकें पसारती,
पूर्णचन्द्र की किरण आरती,
केलि कुशल चल पवन छेड़ता

भर केशर की झोली।

खिले सुमन तन मुग्ध भाव से,
हिले मिले सब सम प्रभाव से,
कण-कण मादक सुख से सुरभित,

मुखरित मधु की बोली!

सजी प्रकृति वरमाल मेलती,
पुरुष संग रति रंग खेलती,
आज मुक्त यौवन मधुवन में,

तन, मन की हमजोली।
प्रिय मधुबन में होली।

उठ रहा तूफान,
क्षितिज की अँगड़ाइयों से उठ रहा तूफान!
घिर रहीं काली घटाएँ
ज्यों मनुज की भावनाएँ
जो पड़ी बन्दी अभी थीं पा गईं उत्थान।
देख लो हँसता गगन
धँसती धरा कँपता पवन
दस दिशाओं ने लिया तम तोम का परिधान।
उमड़ता है जलधि-जल
ज्यों पीड़ितों का अतल कोमल
साँस से ही कर रहा युग-प्रलय का आह्वान।
यह विषम उत्पात
सँभलो, दिवस उल्कापात
ढहता सहज हिमगिरि राज गाता ध्वंश ही के गान।
फट रहा आकाश
धरती धूल का आभास
नित-नव क्रान्ति का परिणाम अभिनव सृष्टि का वरदान।
यह न कोई और
इसको कवि-हृदय में ठौर
डरते मनुजता के मौर पशुबल से बने बलवान।
आओ, रचो नव-नव भोर
समता के किरण की डोर
बाँधे विश्व-जीवन साथ जन-जन का नया अभियान।
स्वागत प्रकृतिप्रिय तूफान।

मन के हैं कुछ काम, काम कुछ तन के किसे सँभालूँ,
दोनों का संघात स्वयं मैं किसको अलग बसालूँ?

कठिन बोध है, इन दोनों का संग-संग ही रहते,
अलग-अलग हम निर्णय नेता, मचल मचल कर कहते।

सच है दोनों एक साथ ही प्राणी का पद पाते,
भेद-भाव का भ्रम भरने में भी हैं होड़ लगाते।

फूल वृक्ष का फल भी उसका दोनों का चिर नाता,
कौन द्वन्द्व करता है भीतर दोनों को उकसाता?

दोनों ही मिल जाँय समन्वय सधे मनुजता जीते,
महाप्रगति के परिप्लावन में बढ़ें सुधा रस पीते।

मन ही तन बन जाय और तन, मन की शीतल छाया,
चले सहज ही मनु का मानव लिए प्राणमय काया।

मुखरित मन के राग जगा दें पद को गति की क्षमता;
तनी रहे इस तन की तनिमा आढ़े मन की ममता।

कविता की सविता सी आभा पथ आलोकित कर दे,
सजी तान-लय की समरसता सब के उर में भर दे।

निरानंद, निर्द्वन्द छंद में तन-मन की मधु वाणी,
फूट पड़े कवि के कंठों से युग की चिति कल्याणी,

छुटे बंध के फंद, बन्द हो विषम रागिनी जग की,
दानवता ढह जाय आप ही मानवता के मग की।

द्वन्द्वातीत अतीत अनागत वर्तमान में फूले,
नभ-धरती पाताल साथ ही एक हिंडोला झूले।

अन्तर जिस अन्तर से भागे समता का सुख जागे,
महा मंत्र वह मानवता का कविता से कवि माँगे।

—१२३—

मानव,

तुम बन गए दानवों से भी भीषण,
भस्मासुर की रीति
आज तुम चला रहे हो,
ऐसे बने विलक्षण ?
यह भौतिक उन्माद
स्वाद है अहंकार का,
एक स्वांग है ऋतु विहार का
जग विनाश का नर्तन।

दानव,

दानव भी तो तुझे देख झँपते हैं,
अपने को कम पा कँपते हैं,
अरे तुम्हारे भीतर धँसकर
अपने से कुछ बढ़कर पाकर
अट्टहास करते हैं;
तुम केवल कुल भंजन।

कहाँ,

नहीं तो यह रणमत्त पिशाची पेशा,
कौन कहाँ पशु अन्य
जीव नगर के वन्य
धन्य वे कभी न करते,
पर तू सदा यही करता है;
स्वार्थ सना खंडन-मंडन।

नित्य नये,

रणवाद्य गरजते,
जन-समूह घिर घुमड़ बरसते
रक्त रूप पानी के बनते
प्रतिहिंसा का सावन,
रक्त-रक्त परिप्लावन
तेरा विश्व संघ मन भावन।

बना हुआ है,

यह न भेड़ियों का शेरों का,
नहीं दानवों का दैवों का,
केवल केवल मही मानवों का
संस्कृति सम्मेलन,
क्यों इसके ऐसे साधन?

तो क्या?

आज विश्व मानव की संस्कृति,
शिक्षा, सम व्यवहार, सामगति,
छोड़, मुक्त मानवता की मर्यादा
रणचंडी का नृत्य कर रही निरुपम?
चढ़ी वायु गति करती नरसंहार,
सुनती हाहाकार
पशुता का प्रत्यावर्तन?

नहीं, नहीं,

ऐसा क्या सम्भव ?
मानवता के अभिमानों का
चिर विकास विधि, कल्याणों का
वैभव विवश पराभव ?
हार-जीत के राष्ट्र नीति के
यह मौजी मूल्यांकन ।

सावधान,

कवि-छवि के रक्षक
आज तुम्हारी बारी,
सुख न पाए कलि-कुसुमों की
मानवता की क्यारी,
प्राण-प्राण का मधुमय सिंचन ।
भारत के स्वर,

बने विश्व वर,

साम्य शक्ति के शान्ति सुधाधर
स्नेह समन्वित सजे विश्व-मन
मानवता की विजय
मानवों की गति का संधान
प्रीति-रीति का अभिनंदन
भव्य भावना का वंदन ।

—१२४—

मनुज तुम्हारी
मनो विकृतियों की
ये सघन घटाएँ,
छाई हैं जल-थल अम्बर में
क्रूर मृत्यु छायाएँ।
सत् विचार जो प्यारे-प्यारे,
छिपते सूरज, चाँद, सितारे,
औ, अन्तर की ज्योति खो गई
ज्यों बादल में बिजली,
काली कथा विश्व की बनती
तेरी गाथा उजली।
बाहर की सज्जा को तुमने
भीतर का सुख माना,
दोनों की सम्यक् समता को
तुमने कभी न जाना,
भूख प्यास पशु की दुर्बलता
लेकर चले निरन्तर,
इसीलिए बाहर से फूले
खाली फिर भी अन्तर।

अवरोधी घन घटा उड़ाओ
संध्या की लाली को हँसकर-
ऊषा का उपहार बनाओ,
यही तुम्हारी सफल मनुजता
प्राण किरण की तूली;
उदयाचल में नई सृष्टि की
नई कल्पना फूली।
आओ ऐ आलोक पुजारी
हिलमिल ऐसा करले,
प्रात पवन के प्राण परस से
तन-मन, जीवन भर ले,
यही तुम्हारी प्रगति प्राणदा
संजीवन की बूटी,
देखो नभ में नव प्रकाश की
घनन घनन घन कड़ियाँ टूटीं !

—१२५—

विश्व-वृक्ष के वृहत् वृन्त में
शेष रहे दो फूल।
एक लाल है, ज्वाला के मधु से
मस्ती से,
क्रान्ति लपेटे, झाँक रहा जो
अपने आगत के सपनों को;
जहाँ बनेगा मानव, मानव के अनुकूल।
जहाँ न होंगे शोषण के
सौ-सौ सौदे मन माने,
एक साथ ही सब गायेंगे
अधिकारों के गाने।
जहाँ न नर से नर जूझेगा,
अपनी कह कर और दूसरों की सुनकर
समझे बूझेगा।
वह ऐसा ही उपवन होगा,
सब के मन का मधुवन होगा,
वहाँ मिलेगा;
इसको सज्जन अरुणिमा को आश्वासन
ऊँचा आसन
जन-जन के मन का सिंहासन।

और दूसरा जो काला है,
रंग महल की तृषा विकम्पित,
दीनों का पी रक्त, भक्त धनियों का
बना प्रकृति का काल बुभुक्षित,
फूटे पाप शाप बन जिसमें,
कालकूट है, तन में, मन में,
बर्बरता का जो प्रतीक है।
थर्राता है,
न्याय नीति के झकझोरों से,
अपने भीतर के चोरों से,
पद मर्दित मिट्टी में मिलकर,
अपनी मति की गति से थककर,
एक आह भर झड़ जावेगा।
काला का मुँह काला होगा,
तरुण-अरुण उजियाला होगा,
यमपुर की गंदी गलियों में
मानव-विद्रोही भटकेगा
कभी न फिर उगने पाएगा!
तमस नहीं आलोक विश्व में
आगे, विजय श्री पाएगा।

—१२६—

नील-नभ-सागर तरंगों की तुला में,
देख लो, वे विहग कहते हैं—
कि वह अब तुल रहा है।
ज्योति का वह जलज जंगम,
सहज अपनी पूर्णता में—
खिल रहा है, खुल रहा है।
तिमिर अपने आप लज्जा में गड़ा,
आँख धरती की बचाकर—
ओस में मिल घुल रहा है।
साम्य के स्नेहिल सुधा-आलोक से,
आज अपने आप जग का-
विषम कलमस धुल रहा है।
ज्योति जगती में जगी सौहार्द्र की,
ध्वंश का डगमग चरण
अब स्वयं निर्माण-पथ में ढुल रहा है।

—१२७—

तुक नहीं मिलता,
कठिन है गीत लिखना,
समझ कर ही आज तक
मैंने नहीं कविता लिखी।
मिल गई लो मुक्ति मुक्ता,
बन गई यह नई कविता
और अब तो तुक नहीं तो पंक्ति बन कर
बिना बादल की भरी बरसात में
नाचते हैं काव्य के अभिनव शिखी।
क्या खूब!
जैसे लहलहाती दूब,
फैली फूलती ये भावनाएँ;
पिल पड़े आवेग,
मानो युद्ध बंदी दूढ़ता बन्दूक।
दूब का जब बन्द है बन्दूक
मात्र मैत्री का सहारा है सधा,
मन की मीनाकारियों के मोल में
आज मानव मन बँधा!
रह गया तन, तो
जरा का, मरण का वह पात्र,
आत्मरत हम सोचते कब?
प्रश्न चिन्हों का नया उपयोग।
तार के ही नहीं, हैं बेतार के भी बोल,
अखिल जीवन में प्रगति की यह दिशा।
मिलते मुक्त मन के द्वार,
खुलते भाव पटल किंवार,
चाहे ईलियट या सार्त्र।

—१२८—

मैं दुधारी गाय,
आओ, दुहो चाहे दूध जितना
पी सकोगे स्वयं कितना ?
कुछ नहीं परवाह ।
मैं अमिय पय-धार
थनों से बोझिल,
चलती पांव पसार,
चैन से चरागाहों में,
नदी की लम्बी बाहों में,
जहाँ भी मिलता ठौर, कछार ।
मैं न लगाती उपवन,
कृषि का कर्षण, बंधन,
अखिल धरित्री की हरीतिमा
मेरा संजीवन, जीवन ।
तुम न डरो, मैं चुन, चर लूँगी,
तुम्हें दूध घी से भर दूँगी ।
पर तुम मानव,
मैं पशु केवल ।
बुद्धिहीन मैं—
मिला सहज ही तुमको उसका सम्बल ।
भय है, तुम अपने विवेक से
हटा वत्स को
अधिकारों की अभय टेक से,
उसका प्राप्य पिओगे,
परोपजीवी बने जिओगे,
इसीलिए नर मर की संज्ञा,
वरना क्या तुम मरते ?

—१२९—

मन के राजमार्ग तो कम हैं
पर गलियाँ अनगिनती !
बड़ी मौज से मैं चलता हूँ
इन दोनों पर
बदल बदल कर
कभी विहँसता कभी विलखता
बढ़ता थम्हता, थम्हता बढ़ता
पर यह सच है
मन से मेरी क्षण भर कभी न निभती !
मै चाहूँ यदि राजमाग
तो मन गलियाँ दिखलाता !
गाली देकर
गलियाँ लेकर
मन को छोड़ अकेला चलता
तन की तनिमा दीपक जलता
जो भी हो,
मैं मन के मारे
पल भर चैन न पाता !
मन का राजा रहा सदा मन
मैं जनयुग का नेता ।

मन का राज आज छिनता है
मैं नेता अधिकारी
कैसी बातें
कैसी घातें
मुझको मन को सब को प्यारी
किन्तु श्रेय मुझको ही मिलता
राजा से नेता
नेता से बढ़कर कोसों आगे
एक बार फिर आज बना मैं
साक्षी निर्गुण चेना !
यह चेता कुछ ऐसा मुझमें
तन में मन में जन्म-मरण में
जो मुझको आगे ढकेलता
तन सहेजता मन समेटता
जो यह सबसे ऊपर;
धरा धाम में
नभ ललाम में
व्यापक जैसे ईथर।
और जब वह कौन ?
शान्त शाश्वत मौन
मैं चला
मेरी कला
औ, केवल वही विजेता !

—१३०—

एक वर्ष के बाद
हिमालय तुझे देखकर
ऐसा लगता है
जैसे कोई अपना आत्मीय मिल गया।
हृदय कमल जो
जलविहीन पंकिलता में पड़
अपनी जननी की गोदी में
सकुचाया था
कुम्हलाया था
तुझे देख कर आज अचानक
पाकर नव उल्लास खिल गया।
क्षुब्ध हृदय में
आकुल-व्याकुल
बंदी सौरभ आज मुक्त हो
मंद गमन नंदनवन विचरण
चंदन तरुतर मधु-मद वितरण
ग्रहण समर्पण से सजीव हो
पा अपना चिर जीवन-यौवन
सुरभित कर तेरी उज्ज्वलता
पीकर दिग्दिगन्त की साँसें
प्रकृति प्राप्त व्यापक पावनता
स्वयं सिद्ध अस्तित्व पा गया,
इसीलिये तू मुझे भा गया।

तेरे ये काले घुंघराले
अलकजाल नव बादल वाले
मेरी ही सौरभ से सुरभित
गंध-अंध नित नभ में पुलकित
मत्तनाग विद्युत-द्युति वाले
इतना तो तू आज जान ले
तेरे सुख की जड़ समाधि यह
मेरे चिर-चेतन से मंडित
यद्यपि तू विराट मैं सीमित।
नभ करता शृंगार-
भाल में चन्दन-कुमकुम रोली
नव प्रकाश की
नवविकास की
नवजागृति की पूजा सम्मत
विहग-विहग की बोली
उदयाचल को किरण माल दे;
नित्य प्रात में
सानु शीश में स्वर्ण मुकुट पहनाकर।
और रात में
स्नेह सिक्त कर
चाँद विहसता
बस रस के स्वर बातें करता
किरण कला के साथ
मित्रता के फैलाता हाथ
माधुरी से सहलाता
नित्य सुलाता तेरा मन बहलाकर।
तुझसे किसी समता ?
पर मैं मानव
मुझे प्राप्त है
कुछ जो मेरा अलख आप्त है
तुझ से बढ़ कर
सिर पर चढ़ कर
प्राण शक्ति का शाश्वत चेतन

कन-कन में संचित समवेदन
मनकी मधुमय ममता।
यह सच है
तेरी करुणा की
स्नेहशीलता की द्रवता की
लहरें जमुना गंगा
प्रकृति परी यह पाणिपल्लवा
तेरे जल से सिंचित
अन्तस्तल की तेरे धड़कन
शतशत जलधि तरंगा।
राष्ट्रछत्र तू !
मेरुदंड है मेरी इस माटी का
अभी याद है
ज्ञान-ध्यान सब
तेरे घर घाटी का,
बहुत से हैं तेरे उपकार
सजलता के अक्षय भंडार !
किन्तु, अरे तेरा स्वभाव यह
अप्रयास अनजाना
बोलो तो क्या कभी किसी ने
इनको तेरे संकल्पों के
सत्यों का क्रम माना ?
यह संकल्प-विकल्प
मनुज के अपने सपने
सुख के साथी
और साथ ही
दुख में भी ये अपने
तेरे जड़ समत्व में इनके
तोषण की कब क्षमता ?
इनको प्राणवंत करती है
मनुजोचित चेतनता !
कालिदास, टैगोर, महादेवी, प्रसाद ने
माखनलाल, पंत, दिनकर, ने

तेरे गुण गौरव की गाथा
बहुत तरह से गाई
लेकर नया प्रश्न मैं आया
कान खोल सुन भाई।
बँट गया देश, बढ़ गया क्लेश
लुट गई लाज मर्यादा
भूख प्यास का भैरव नर्तन
दानव से मानव का मंथन
अन्तर्ज्ञान विलुप्त सुप्त सत्
बहता नव विज्ञान प्रभंजन
आत्मज्ञान आनन्द छोड़ जग
करता सुख-शरीर का पोषण
यह विडम्बना जनजीवन की,
इच्छा क्यों पूरी हो मन की?
कूटनीति की जीत
प्रीति पर भीति चढ़ी है
द्वन्द्व युद्ध के जय घोषों की
डफली जीवित मनुज चर्म से
फूली और मढ़ी है
सब कुछ सत्यानाश
चतुर्दिक फैला हाहाकार
विषमता का यह पारावार,
अरे तू अब भी साधे मौन?
विस्मृति के इन छल पलनों में
तुझे झुलाता कौन?
यही समय,
तू सँभल खड़ा हो
महागगन को थाम शीश से
अडिग चरण युग धरती पर धर
फैला निज प्रलम्ब बाहों को,
अरे हिमालय करुणालय तू
अखिल विश्व का कर आलिंगन
हृदय लगा कर शीतल कर दे

उठती, गिरती और टूटती
हत्यारी मानव चाहों को।
बढ़े दनुज सिर चढ़े नाचते
पशुबल का परिणाम जाँचते
मानवता बिललाती,
शंकर के शुभ हास
सृष्टि संरक्षण तेरी थाती।

यह कुमारसम्भव की वेला
छोड़ समाधि जाग अलवेला
सती वरण कर शिव सन्यासी
उठ, कल्याणों के कैलाशी
बना सभी के सुख साधन का
समता सरसविधान,
जाग उठे फिर से जीवन में
जग में नया विहान;
चेतना का अभिनव अभियान!

और अमर हो मेरी तेरी
जड़-चेतन की मंगल फेरी
युग युग की पहचान,
जाग उठ, जाग जाग हिमवान!